वर्ष 8, अंक 2 (अप्रैल-सितम्बर 2022)

वेबसाइट% www.aifrte.in

अखिल भारत शिक्षा अधिकार मंच

तालीम की लड़ाई

('केजी से पीजी' तक मुफ़्त और समतामूलक शिक्षा का समर्थक और शिक्षा में हर प्रकार के व्यापार का प्रतिरोधी मुखपत्र)

अखिल भारत शिक्षा अधिकार मंच का त्रैमासिक प्रकाशन

संपादकीय

नजरिया

सम्मान के जुमलों और हकीकत से जूझते शिक्षक 05

भारतीय कक्षा में कट्टरता का मुकाबला 06

समसामयिकी

स्कूलों में जातिगत भेदभाव और हिंसा 10

भारत में बड़े पैमाने पर स्कूलों को बंद करने 13

भाषाई साम्राज्यवाद 24

भारत में उच्च शिक्षा 29

सरगर्मियाँ 37

संगठन की रपटें/प्रेस विज्ञप्ति 57

राम नवमी के अवसर पर आरएसएस-एबीवीपी गुंडागर्दी

तेलंगाना सरकार द्वारा शिक्षकों की गिरफ्तारी

चंडीगढ़ एमएमएस वीडियो पर

स्टूडेंट ऐक्शन कमेटी, जम्मू का सघर्ष

कविता: शिंदा ओनानोको (मृत लड़की) 60

संपादक
जी शंकर
संपादक मंडल
चतुरानन ओझा (उ.प्रदेश)
फ़िरोज़ (दिल्ली)
लाल्टू (हैदराबाद)
राजेश आज़ाद (दिल्ली)
कवर डिज़ाइन
ओमप्रकाश कुमार (मुज़फ़्फ़रपुर)
संपादकीय संपर्क
ईमेल: taleemkiladai@gmail.com

सहयोग राशि : 30/-

संपादकीय

भारत की आज़ादी के 76वें वर्ष में देश-समाज को समझने और बदलने के सिलसिले में सार्वजनिक शिक्षा की बात करें तो आज दुनिया में शिक्षा के संकट का सामना करनेवाले बच्चों की तादाद 22.2 करोड़ से ज़्यादा है। यह आँकड़ा जून, 2022 में संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा प्रकाशित अध्ययन के मुताबिक है। गौरतलब है कि यह भारत के स्कूलों में मौजूद बच्चों की तादाद के लगभग बराबर है। कोविड के दौरान दुनिया भर के 91 फीसदी बच्चों की शिक्षा प्रभावित हुई। बेरोजगारी और महंगाई की मार का पूरी दुनिया के साथ भारत पर भी ज़बरदस्त असर पड़ा है। बच्चों के खाना के बारे में सोचना पड़े तो शिक्षा या किसी और चीज के बारे में सोचना वाक़ई मुश्किल होता है। पिछले एक-डेढ़ दशक से मौजूदा वक़्त तक शिक्षा पर तीखे हमले जारी हैं।

इलाहाबाद हाईकोर्ट ने अगस्त 2015 में ऐतिहासिक फैसला देते हुए निर्देश दिया था कि सरकार सुनिश्चित करे कि राजकीय खजाने या सार्वजनिक निधियों से किसी तरह की अतिरिक्त आमदनी, लाभ या वेतन पानेवाले सरकारी कर्मचारी, अर्ध कर्मचारी, स्थानीय निकाय जनप्रतिनिधि जिसमें मुखिया और सरपंच से लेकर मुख्यमंत्री को भी शामिल किया गया, न्यायिक कर्मचारी और अन्य सभी, प्राथमिक शिक्षा पाने की उम्र के अपने बच्चों को सरकारी स्कूल में ही भेजें। अदालत ने इस बात की ओर ध्यान दिलाया कि आज़ादी के दशकों बाद आज भी सरकारी स्कूल बुनियादी सुविधाओं के लिए तरस रहे हैं, क्योंकि नीति निर्धारक अपने बच्चों को सम्पन्न निजी स्कूलों में भेजते हैं और इसलिए सरकारी स्कूलों में उनकी खास रुचि नहीं है। अदालत ने सरकार को छह महीने के अंदर फैसले को लागू करने का निदेश दिया और यह भी कहा

कि शर्तों को नहीं माननेवालों को सजा दी जाए। यद्यपि यह फैसला आज तक लागू नहीं किया गया, लेकिनइसने इस बहस को उठाया कि क्या सबको समान शिक्षा के बिना हम अपने समाज को मजबूत बना सकते हैं ?

सच्चाई तो यह है कि आज़ादी के 76वें वर्ष के अमृत काल में शिक्षा की बदहाली की बात करनी पड़ रही है। आज प्राथमिक से उच्च शिक्षा तक को कई खुले हाथों में अराजक तरीके से छोड़ दिया गया है। सरकारी, अर्ध सरकारी, गैरसरकारी, कौरपोरेट, धार्मिक न्यासों के स्कूल, कॉलेज, विश्वविद्यालय ऐसे बिखरे पड़े हैं, जिनके शिक्षा के विचार और लक्ष्य जुदा-जुदा हैं। ऐसी संस्थाओं में पढ़ाई का माध्यम, फीस के ढांचे से लेकर पाठ्यक्रम भी अस्पस्ट हैं। समाज में गैर-बराबरी की मिशाल इससे बेहतर हो ही नहीं सकती। मुट्ठीभर बड़े घरानों से चलनेवाली हमारी अर्थव्यवस्था में अदालत सरकारी स्कूलों को आम लोगों का स्कूल कहती है। आज आम लोगों के स्कूल की वही स्थिति है, जो स्थिति आम लोगों की है। सरकारी आँकड़े बताते है कि हमारे देश में लगभग सवा करोड़ बच्चे बाल मजदूरी करते हैं । अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के अनुसार तो हमारे देश में पाँच करोड़ बाल मजदूर हैं, यानि पाँच करोड़ बच्चे स्कूल से बाहर हैं। दूसरी ओर 40 फीसदी बच्चे सातवीं-आठवीं तक पढ़ाई के बाद स्कूल छोड़ देते हैं। सरकारी भाषा में इसे ड्रॉप-आउट कहा जाता है। माहिर-ए-इल्म प्रो अनिल सद्गोपाल इसे पुश-आउट मानते हैं। ड्रॉप-आउट में सरकार अभिभावकों को दोषी मानती है, जबकि पुश-आउट के लिए सरकार जिम्मेदार है। यानि गलत सरकारी नीतियों की वजह से बच्चे स्कूल छोड़ने को मजबूर होते हैं। उनका मानना है कि हमारी स्कूली व्यवस्था में ही इतनी खामियाँ हैं कि बच्चे मनोवैज्ञानिक रूप से स्कूल में टिक ही नहीं पाते। खास तौर पर दलित, आदिवासी और अल्पसंख्यक बच्चों के स्कूल छोड़ने की तादाद बहुत ज्यादा है। उनके साथ होनेवाला भाषाई और सामाजिक-सांस्कृतिक भेदभाव इसका एक बड़ा कारण है। आमलोगों के लिए बने स्कूल आमलोगों की ज़िंदगी बर्बाद कर रहे हैं। संभ्रांत और मध्यम वर्ग ने तो अपने बच्चों को सरकारी स्कूलों से बाहर निकाल लिया है। सबको समान शिक्षा न देने की व्यवस्था के कारण ऐसा हो रहा है। उदारीकरण की नीति कहती है कि जिसके पास जितना पैसा है, उसे उतनी शिक्षा मिलेगी। जितनी तेजी से नए स्कूल खड़े हुए हैं, उतनी ही तेजी से कोचिंग संस्थान भी पैदा हुए हैं। शिक्षा का यह व्यवसायिकरण आम नागरिकों को शिक्षा से बाहर कर रहा है। विश्वविद्यालयों को भी अब अनुदान की जगह कर्ज लेने के लिए खुद से फंड जुटाने के लिए दबाव डाला जा रहा है। इन बातों का सीधा असर आम जनों पर पड़ रहा है। इल्म के माहिरों का मानना है कि बिना सामाजिक भागीदारी के शिक्षा को बाज़ार के चंगुल से नहीं निकाला जा सकता है। शिक्षा अधिकार कानून भी समान शिक्षा व्यवस्था का रास्ता नहीं खोलता। तालीम के लिए बड़ी लड़ाई बाकी है।

तालीम की लड़ाई को आगे बढ़ाने के लिए जनचेतना को लामबंद करना ही एकमात्र विकल्प है। इसी एहसास के साथ 2009 में प्रो अनिल सद्गोपाल और उनके साथियों ने अखिल भारत शिक्षा अधिकार मंच की स्थापना की और शिक्षा के बाजारीकरण को खत्म करने तथा सबके लिए समान स्कूल व्यवस्था के लिए आंदोलन छेड़ दिया। इस विषय पर 30 जून से 01 जुलाई 2012 तक चेन्नई में राष्ट्रीय सम्मेलन आयोजित हुआ जिसमें आगामी आंदोलन की रूपरेखा तय की गई। सम्मेलन में जो निर्णय लिए गए उसे चेन्नई घोषणा पत्र में संकलित किया गया। इस सम्मेलन में शिक्षा अधिकार कानून 2009 का सख्त विरोध किया गया, क्योंकि

1. यह निजी स्कूलों के प्रबन्धकों को मनमाने ढंग से शुल्क बढ़ाने की छूट देता है और इस तरह शिक्षा के बाजारीकरण की रफ्तार को तेज़ करता।

2. यह मुट्ठीभर कमजोर वर्ग के बच्चों का शुल्क प्रतिपूर्ति स्कीम लागू करके स्कूली शिक्षा के बेलगाम बाज़ारीकरण के लिए दरवाजे खोल देता है।

3. यह न केवल मौजूदा बहुपरती एवं गैर-बराबर स्कूल व्यवस्था को कानूनी जामा पहनाता है, बल्कि साथ में शिक्षा के विभिन्न आयामों में गैर-बराबरी और भेदभाव को भी और आगे बढ़ाता है।

4. यह अंततः सरकारी स्कूलों को बंद करने के रास्ते खोलता है और स्कूल व्यवस्था को जनता की चिरप्रतीक्षित समान स्कूल व्यवस्था से ठीक उल्टी दिशा में धकेलता है।

शिक्षा हमारा मौलिक अधिकार है। शिक्षा राष्ट्र के निर्माण का आधार है। लेकिन विश्व व्यापार संगठन ने जनरल अग्रीमेंट ऑन ट्रेड इन सर्विसेस(गैट्स) के तहत शिक्षा को भी व्यापारिक सेवा के अंतर्गत शामिल कर लिया है। इसका मतलब यह हुआ कि विश्व व्यापार संगठन में शामिल देश एक-दूसरे के यहाँ शिक्षा का व्यापार कर सकते हैं, अपने कॉलेज, यूनिवर्सिटी खोल सकते हैं और अपने हिसाब से पाठ्यक्रम तय कर सकते हैं। वे यह तय कर सकते हैं कि इस देश के बच्चों को क्या पढ़ाना है और क्या नहीं पढ़ाना है।

अखिल भारत शिक्षा अधिकार मंच के बैनर के नीचे विभिन्न राज्यों के सैकड़ों संगठन उच्च शिक्षा को विश्व व्यापार संगठन के हवाले करने का विरोध कर रहे थे। तेलंगाना से शुरू हुआ विरोध का स्वर दिसंबर 2018 में दिल्ली तक पहुंचा , जहाँ जंतर-मंतर पर देश भर से आए संगठनों ने सरकार से विश्व व्यापार संगठन में उच्च शिक्षा के व्यापारीकरण के प्रति जताई गई अपनी प्रतिबद्धता तुरंत वापस लेने की मांग की। 18 फरवरी 2019 को दिल्ली में आयोजित हुंकार रैली उसी का एक हिस्सा थी।

अखिल भारत शिक्षा अधिकार मंच राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 को गरीबों-वंचितों के लिए शिक्षा से बेदखली का घोषणापत्र मानता है। सबके लिए तालीम की लड़ाई की शृंखला में 27 मई 2022 को राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के तहत उच्च शिक्षा पर अखिल भारत गोष्ठी का आयोजन गांधी पीश फ़ाउंडेशन, दिल्ली में अखिल भारत शिक्षा अधिकार मंच की दिल्ली समन्वय समिति द्वारा किया गया। फिर 3 अगस्त 2022 को एन ई पी 2020 के खिलाफ राष्ट्रव्यापी विरोध का आह्वान किया गया। अंतर्राष्ट्रीय आदिवासी दिवस और भारत छोड़ो आंदोलन की वर्षगांठ के अवसर पर 9 अगस्त 2022 को सुबह 9.00 बजे से अखिल भारत शिक्षा अधिकार मंच के फेसबुक पर एन ई पी 2020 के खिलाफ महत्वपूर्ण विंदुओं पर पोस्ट किया गया। हर शाम 5.00 बजे से 8 बजे तक ट्विटर पर इसी तरह का अभियान चलाया गया। एन ई पी 2020 के कार्यान्वयन के दौरान पिछले दो वर्षों में उभरे विभिन्न मुद्दों पर संगठनात्मक नेताओं, शिक्षाविदों और मशहूर हस्तियों द्वारा वीडियो क्लिप साझा किए गए तथा एन ई पी के खिलाफ महत्वपूर्ण लेखों के लिंक साझा किए गए।

1991 में शुरू हुआ बेतहाशा निजीकरण तालीम की दुनिया में अपने विकराल रूप में मुंह बाए सब कुछ निगल जाने पर आमादा है। मौजूदा फासिस्ट सरकार आपदा बनकर कहर बरपा रही है तथा जनता पर थोपी जा रही इन आपदाओं को पूँजीपतियों के लिए अवसर बनाकर परोस रही है। राजसत्ता के नापाक इरादों की पुख्ता पहचान कर हमें अखिल भारत शिक्षा अधिकार मंच के बैनर तले तालीम की लड़ाई तेज करनी होगी। हमें यह समझना होगा कि समान शैक्षिक अवसरों के लिए संघर्ष पूंजीवाद के खिलाफ संघर्ष है।

मुफ़्त-सार्वभौमिक-वैज्ञानिक शिक्षा के अधिकार की इस लड़ाई में भी सभी सामाजिक-राजनीतिक लड़ाइयों की तरह संघर्ष और निर्माण के पहलू एक दूसरे से द्वन्द्वात्मक तरीके से जुड़े हुए हैं। इस मौजूदा अन्यायपूर्ण शिक्षा व्यवस्था

के खिलाफ जुझारू संघर्ष किए बिना एक नई न्यायसंगत शिक्षा व्यवस्था की ओर बढ़ा नहीं जा सकता। इसे व्यापक जनमानस तक विकल्प की तरह ले जाना होगा:

भूलना नहीं है कि

सबसे बुनियादी जरूरतें क्या हैं और क्या हैं हमारे लिए गैरज़रूरी,

जिन्हें लगातार

हमारे लिए सबसे ज़रूरी बताया जा रहा है।

भूलना नहीं है शब्दों के वास्तविक अर्थों को

और यह कि अभी भी लड़ना उतना ही ज़रूरी है।

सम्मान के जुमलों और हकीकत से जूझते शिक्षक

-प्रो अनिल सदगोपाल

'शिक्षकों के लिए ऊंचा सम्मान और शिक्षा के पेशे के ऊंचे दर्जे को एक बार फिर स्थापित करना होगा, ताकि सबसे उम्दा लोगों को इस पेशे में आने के लिए प्रेरित किया जा सके। हमारे बच्चों और देश का बेहतरीन भविष्य सुनिश्चित करने के लिए यह जरूरी है कि शिक्षक अपने पेशे के लिए उत्साहित और सशक्त महसूस करें।'- राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 (खंड 5.1)

आजादी के बाद यह पहली बार नहीं है कि शिक्षा नीति ने शिक्षकों के हालात के बारे में ऐसे ऊंचे इरादे जाहिर किए हों। सवाल यह है कि इन इरादों को जमीन पर उतारने के लिए नीति में क्या प्रावधान किए गए हैं? अगर नीति और प्रावधानों के बीच में विसंगतियां हैं, तो ये इरादे महज जुमले बन जाते हैं।

इस कसौटी पर राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 की पड़ताल करना निहायत जरूरी है। बरसों से आंगनबाड़ी, स्कूल, कॉलेज और विश्वविद्यालय, सभी में बड़ी तादाद में शिक्षकों की नियुक्ति ठेके पर की जा रही है। आए दिन वे अपने सम्मान की लड़ाई के लिए आंदोलनरत रहने को मजबूर हैं। स्कूलों में शिक्षाबंदी होना आम बात है, जिससे न राजसत्ता को कोई फर्क पड़ता है, और न समाज के कुलीन वर्गों व जातियों को, चूंकि इन सबके बच्चे महंगे निजी स्कूलों में पढ़ रहे हैं। दुनिया के किसी भी विकसित मुल्क में अगर शिक्षकों को इस तरह बार-बार आंदोलनरत होना पड़ता, तो राजसत्ता की चूलें हिल जातीं, क्योंकि समाज के सभी तबकों के बच्चे सरकारी स्कूलों में ही पढ़ते हैं।

इसीलिए कोठारी आयोग (1966) ने अपनी रिपोर्ट में लिखा था कि लोकतंत्र में ऐसे किसी स्कूल के लिए जगह नहीं हो सकती, जो फीस लेता हो। जाहिर है, फीस लेते ही शिक्षा में भेदभाव की शुरुआत हो जाती है। यह सब समझकर ही दुनिया के सभी विकसित मुल्कों ने अपनी स्कूल-व्यवस्था को सरकारी संसाधनों से चलाया। क्या भारत इस ऐतिहासिक वैश्विक अनुभव का अपवाद हो सकता है?

कोठारी आयोग ने इसी समझदारी के आधार पर सभी वर्गों और जातियों के बच्चों के लिए सरकार द्वारा वित्त-पोषित समान स्कूल-व्यवस्था कायम करने की जोरदार सिफारिश की थी, और साथ में यह भी कहा था कि इस व्यवस्था में स्कूल से लेकर विश्वविद्यालयों तक शिक्षकों को सम्मानजनक वेतनमान एवं सेवा-शर्तों पर नियुक्त किया जाएगा। आज यह पूछना जरूरी है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 शिक्षकों के लिए उपरोक्त सिद्धांतों को स्वीकारती है या नहीं? हकीकत यह है कि यह नीति शिक्षकों की नियुक्ति और सेवा-शर्तों के कई ज्वलंत मुद्दों पर मौन है।

यह नीति सरकारी स्कूलों के शिक्षकों से ग्राम पंचायत से लेकर संसद तक के चुनावों, जनगणना व आपदा-राहत जैसे गैर-शैक्षणिक काम कराने पर भी पाबंदी नहीं लगाती, जबकि निजी स्कूलों के शिक्षकों को इनसे मुक्त रखती है।

शिक्षकों और आंगनबाड़ी/ ईसीसीई कर्मियों के हालात तो अब और बदहाल हो जाएंगे। चूंकि सरकारी स्कूलों के शिक्षकों के लिए लाजिमी होगा कि वे अपनी सेवाएं समूचे स्कूल कॉम्प्लेक्स में दें; यह नीति स्कूल कॉम्प्लेक्स के चलते 'विद्यार्थी-

शिक्षक अनुपात' को घटाने के रास्ते खोलती है; नियोक्ताओं को परख-अवधि (प्रोबेशन) बढ़ाने की इजाजत देती है, जिसका इस्तेमाल शिक्षकों के शोषण के लिए किया जाएगा; यह शिक्षकों का ठेकाकरण बढ़ाने के लिए 'कार्यकाल ट्रैक' प्रणाली को भी लागू करती है; यह नीति भर्ती और पदोन्नति, दोनों में पूरे सामाजिक न्याय के एजेंडे पर असर डालती है; यह विश्वविद्यालयों में शिक्षकों के अकादमिक परिषद् और कार्यकारी परिषद् जैसे निर्वाचित निकायों की जगह कुलपति के ऊपर 'बोर्ड ऑफ गवर्नर्स' का नया प्रावधान करती है। इसके चलते शिक्षकों के लिए किसी अहम मुद्दे पर भी अपनी आवाज उठाना कठिन हो जाएगा।

जब नई नीति में न समान स्कूल-व्यवस्था को खड़ा करने का कोई प्रावधान है और न ही शिक्षकों की भर्ती व पदोन्नति के लिए कोई न्यायपूर्ण समतामूलक व्यवस्था है, तो फिर नीति में व्यक्त उपरोक्त इरादा कि शिक्षकों को समाज में सबसे ऊंचा सम्मान और दर्जा मिलना चाहिए, गले नहीं उतरता। जाहिर है, हमें ऐसी शिक्षा नीति चाहिए, जो संविधान में निहित समानता, सामाजिक न्याय (आरक्षण समेत) और भेदभाव से मुक्त सिद्धातों की बुनियाद पर खड़ी की गई हो।

(✍ **अनिल सद्गोपाल**
पूर्व डीन, शिक्षा संकाय, दिल्ली विश्वविद्यालय)
(प्राइमरी का मास्टर॰कॉम से साभार)

****

भारतीय कक्षा में कट्टरता का मुकाबला

- रोहित कुमार

कई वर्षों से मैं हाई स्कूल के छात्रों के लिए 'फाइंडिंग यू' नामक कार्यशाला का आयोजन करता रहा हूँ। इसका उद्देश्य किशोरों को अपनी अनूठी आवाज और पहचान खोजने में मदद करना है और किशोरावस्था में उत्पन्न गुस्से से निपटने का रास्ता दिखाना है। इस कार्यशाला के दौरान गतिविधियों में से एक में छात्रों को पत्रिकाओं और समाचार पत्रों से चित्रों को काटना और चिपकाना और उनकी आशाओं, सपनों और अद्वितीय व्यक्तित्वों को दर्शाने वाले अलग-अलग कोलाज बनाना शामिल है। इस उद्देश्य के लिए मैं उन्हें अपने घरों से पुरानी पत्रिकाएं और समाचार पत्र लाने के लिए कहता हूं।

हालाँकि, COVID-19 महामारी और स्कूलों के बंद होने से इन सत्रों में दो साल का अंतराल आया। मैंने इस साल एक बार कार्यशालाओं को फिर से शुरू किया। मुझे आश्चर्य हुआ कि पिछले कुछ वर्षों में छात्रों की विश्वदृष्टि में कितना बदलाव आया है। हिंदुत्व के प्रचार से अब प्रिंट, इलेक्ट्रॉनिक और सोशल मीडिया पूर्णतः आच्छादित है।

मुझे अपना जवाब बहुत जल्दी मिल गया। महामारी से पहले के वर्षों में छात्र उपर्युक्त कोलाज बनाने की गतिविधि के लिए इंडिया टुडे, कॉनडे नास्ट ट्रैवलर, वोग, आदि पत्रिकाएँ लाते थे। इस बार मैं घबरा गया, क्योंकि मैं ने कुछ ऐसा देखा जो पहले कभी ढेर में नहीं देखा था - पांचजन्य की प्रतियां, आरएसएस प्रकाशन की, जो खुले तौर पर एक हिंदू राष्ट्र के विचार की वकालत करता है। मैंने शांति से यह देखने का फैसला किया कि चीजें कैसे विकसित होती हैं।

जब वे अपना कोलाज बना रहे थे, उनमें से एक जोड़े के बीच वंशवाद का विषय आया। उनमें से एक ने खुशी-खुशी दूसरे से कहा, "मेरे दादा-दादी पाकिस्तान से आए थे और मुझे वहां जाने में कोई दिक्कत नहीं होगी। मैंने सुना है कि वहां के लोग काफी मेहमाननवाज हैं और खाना बहुत अच्छा है!"

दूसरी छात्रा ने तुरंत जवाब दिया, “मैं वहाँ कभी नहीं जाऊँगी! मुझे मुसलमानों से नफरत है!"

यह सुनकर मैंने कहा, "यह एक तीखा बयान है । आप मुसलमानों से नफरत क्यों करती हैं? क्या उन्होंने कभी आपको चोट पहुँचाने के लिए कुछ किया है?”

"ठीक है, नहीं..." उसने झिझकते हुए जवाब दिया, "लेकिन मेरे माता-पिता ने मुझे बताया कि वे खतरनाक लोग हैं।"

"लेकिन, क्या आपने निश्चित रूप से यह जानने के लिए किसी मुस्लिम व्यक्ति से व्यक्तिगत रूप से बातचीत की है?" मैं दृढ़ रहा।

"मैंने नहीं किया," उसने अंतिम स्वर में उत्तर दिया, "लेकिन मेरे माता-पिता उनसे नफरत करते हैं, और इसलिए मैं भी करती हूं।"

जिस बात का मुझे डर था, वही हो गया। उनके मन और घरों में सांप्रदायिकता का जहर घुस गया था। उस रात मैं बेचैन हो गया और सोचने लगा कि इसे कैसे संबोधित किया जाए। अगली सुबह मैंने पूर्वाग्रह के बारे में बात करने का फैसला किया और छात्रों से रूढ़िवादिता के उदाहरण मांगे। कई उदाहरण पेश किए गए और अंत में जो छात्र पाकिस्तानी व्यंजनों का स्वाद लेना चाहता था, उसने धीरे और अस्थायी रूप से कहा, "मैं हर समय सुनता हूं कि सभी आतंकवादी मुसलमान हैं।"

मैंने कक्षा से पूछा कि उनमें से कितनों ने पहले भी ऐसा सुना था। धीरे-धीरे सबने हाथ खड़े कर दिए। मैंने उनसे पूछा कि क्या उन्हें मार्च 2020 में पहली बड़ी तालाबंदी याद है। बस उनकी स्मृति को ताज़ा करने के लिए मैंने उन्हें याद दिलाया कि कैसे जब देश केवल चार घंटे की नोटिस पर 21 दिनों के लॉकडाउन पर चला गया, लाखों प्रवासी कामगारों ने अचानक खुद को काम से बाहर पाया और बिना पैसे या रहने की जगह के। शहरों में खुद को बनाए रखने में असमर्थ और सैकड़ों किलोमीटर दूर अपने गृहनगर या गांवों में लौटने के लिए कोई परिवहन उपलब्ध नहीं होने के कारण, वे बस, पैदल या साइकिल से घर जाने लगे। कई लोगों को पुलिस ने पीटा। कुछ पर केमिकल का छिड़काव किया गया। कई की रास्ते में ही मौत हो गई।

मैंने छात्रों से कहा कि प्रवासी पलायन शुरू होने के कुछ दिनों बाद मेरे एक मित्र ने मुझे आधी रात को एक पीड़ादायक संदेश भेजा, जिसमें कहा गया था, "हमें इन लोगों की मदद करने की ज़रूरत है!"

अगली सुबह वह दोस्त, जो मूल रूप से उत्तर प्रदेश के सीतापुर का रहने वाला है, लेकिन उस समय दिल्ली में रह रहा था, उसने मुझे बताया कि उसे सीतापुर के प्रवासी कामगारों से मदद के लिए लगातार अपील मिल रही थी जो दिल्ली में फंसे हुए थे। उसने सुझाव दिया कि हम बसों को किराए पर लेने की कोशिश करें और इन लोगों को घर पहुंचाने में मदद करें। मैं ने सहमति दी ।

हम ने प्रोजेक्ट को 'डेस्टिनेशन होम' कहा और सोशल मीडिया पर एक अपील की। घंटों के भीतर, मदद मिलनी शुरू हो गई और दो महीने के अंत तक हम लगभग 2,000 प्रवासी श्रमिकों को बस और ट्रेन से घर भेजने में कामयाब रहे।

मैंने छात्रों को बताया कि उस समय इन बसों के लिए सीमा पार करने की अनुमति प्राप्त करना कितना मुश्किल था और कैसे मेरा दोस्त न केवल हर एक दिन तपती गर्मी में बस परमिट लेने के लिए दौड़ता था, बल्कि उसने इन परिवारों के लिए भोजन के पैकेट की भी व्यवस्था की और अपनी सूची से हर एक प्रवासी श्रमिक को यह सुनिश्चित करने के लिए बुलाया कि कोई भी पीछे न छूटे।

मैंने छात्रों को बसों में सवार प्रवासी कामगारों की तस्वीरें और वीडियो दिखाए, जिनमें वे चार भी शामिल हैं, जो साल के सबसे गर्म दिन में सोनीपत से दक्षिण दिल्ली साइकिल से तक गए थे सिर्फ इन बसों में से एक पर चढ़ने और सीतापुर जाने में सक्षम होने के लिए। परिणामस्वरूप, हाथ में फफोले हो गए थे और पैर सूज गए थे।

वाकई इन बातों को जानकार छात्र मर्माहत हुए।

और फिर मैंने कहा, "वैसे, मेरा यह दोस्त जिसके बारे में मैं बात कर रहा हूं, उसका नाम जरताब भाई है। वह मुसलमान है और उसने यह सब रोजा रखते हुए किया। अब भी लगता है कि मुसलमान भयानक लोग हैं?"

इसके बाद जो हुआ वह था 'मुक्कमल खामोशी' और फिर धीरे-धीरे एक छात्र ने ताली बजाई, उसके बाद दूसरा और फिर तीसरा। तब पूरी कक्षा ने सच्चे दिल से तालियों की गड़गड़ाहट की, जो बहुत देर तक चलती रही। यह एक खूबसूरत पल था।

कट्टरता का विरोध करने के महत्व के बारे में एक जोशपूर्ण चर्चा शुरू हुई। अधिकांश छात्रों ने स्वीकार किया कि वे भी मानते थे कि मुसलमानों के बारे में आंतरिक रूप से कुछ 'खतरनाक' है, लेकिन इस कहानी ने उन्हें सोचने के लिए मज़बूर कर दिया। (यह ध्यान रखना दिलचस्प था कि इस कक्षा में कोई मुस्लिम छात्र नहीं था।) हम अंततः इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि धर्म या समुदाय द्वारा लोगों को रूढ़िवादी समझना गलत और खतरनाक है।

जिस लड़की को यकीन हो गया था कि वह 'मुसलमानों से नफरत करती है', उसने मुझे बताया कि वह अपने व्यापक अवधारणाओं में कितनी गलत थी। इससे वह शर्मिंदा थी। मैंने उसे अपना मन बदलने के लिए अपने-आप को तैयार करने के लिए उसकी सराहना की। मैं सोच रहा था कि क्या वह इस बारे में अपने माता-पिता से चर्चा करेगी। अगर उसने किया, तो मुझे संशय हुआ कि वे कैसे प्रतिक्रिया देंगे।

यहाँ डरना स्वाभाविक है कि हिंदुत्व के अथक प्रचार के सामने हमारे युवा आलोचनात्मक सोच से हारे हुए हैं, लेकिन यह सच नहीं है। जैसा कि इस अनुभव ने दिखाया, युवा लोग (किशोर, विशेष रूप से) तर्क के लिए खुले हैं और एक बहुत अच्छा मौका है कि वे तथ्यों को सुनेंगे यदि हम उनके साथ शांति, निष्पक्ष और सम्मानपूर्वक बातचीत करेंगे और वास्तविक जीवन के उदाहरणों के साथ जिन मूल्यों का हम समर्थन करते हैं।

(रोहित कुमार, सकारात्मक मनोविज्ञान और साइकोमेट्रिक्स की पृष्ठभूमि वाले शिक्षक हैं। सौजन्य: द वायर।)

स्कूलों में जातिगत भेदभाव और हिंसा को ख़त्म करना है तो द्रोणाचार्य के नहीं, सावित्रीबाई फूले के दिखाए रास्ते पर चलना होगा

लोक शिक्षक मंच राजस्थान के जालौर ज़िले के एक निजी स्कूल में शिक्षक के हाथों हिंसा का शिकार हुए दलित पृष्ठभूमि के तीसरी कक्षा के छात्र इंद्र कुमार मेघवाल की मौत पर गहरा दुःख और आक्रोश व्यक्त करता है।

राजस्थान भारत के उन कई राज्यों में से एक है जहाँ जातिगत आधार पर सामाजिक-राजनैतिक सत्ता व दमन का बोलबाला है। सत्ता के जातिगत चरित्र का पता इस बात से ही लग जाता है कि हिंसा की घटना के बाद लगभग तीन हफ़्तों तक तो इंद्र कुमार मेघवाल के परिवारजन एक तरफ़ अस्पतालों के चक्कर काटते रहे, और दूसरी तरफ़ उन पर 'समझौते' का दबाव बनाया गया। आख़िरकार, छात्र की मौत के बाद और परिवार तथा समुदाय के संघर्ष के चलते मीडिया व प्रशासन इस हत्या का संज्ञान लेने पर मजबूर हुए।

अख़बारों व अन्य मीडिया पटलों पर आई रपटों के अनुसार 20 जुलाई को शिक्षक छैल सिंह ने, जोकि उक्त स्कूल के प्रिंसिपल भी हैं, इंद्र को जातिगत आधार पर अलग से इस्तेमाल के लिए रखे गए मटके से पानी पीने पर जातिसूचक शब्दों का प्रयोग करते हुए मारा। छात्र की चोट गहराती गई और अंततः 13 अगस्त को इंद्र की मौत हो गई।

एक तरफ तनाव से निपटने के नाम पर क्षेत्र में सभाओं आदि पर निषेधाज्ञा लगाकर पीड़ित परिवार से सामाजिक-दलित संगठनों को मिलने से रोक दिया गया, दूसरी तरफ जातिगत रूप से दबंग समूहों की 'महापंचायतें' धड़ल्ले से आयोजित की गईं।

इस बीच मीडिया के एक हिस्से में इस तरह की रपटें भी आने लगीं कि स्कूल में अलग से कोई मटका नहीं था और शिक्षक ने इंद्र कुमार मेघवाल को जातिगत आधार पर नहीं, बल्कि बच्चों की आपसी लड़ाई के नतीजतन मारा था। लेकिन इस सच से कौन मुकर सकता है कि जातिगत तिरस्कार हमारी संस्कृति व मान्यताओं में रचा-बसा है, तथा हर रोज़ सैकड़ों लोग प्रत्यक्ष जातिगत हिंसा का शिकार होते हैं लेकिन उनमें से कुछ ही अपनी शिकायत दर्ज करा पाते हैं।

शिक्षा संस्थानों में जातिगत हिंसा की यह घटना: न पहली है और, अफ़सोस, न आख़िरी

जब राजस्थान में सरस्वती विद्या मंदिर नामक स्कूल से इस घटना की खबर आई, उन्हीं दिनों उत्तर-प्रदेश के बहराइच ज़िले के एक निजी स्कूल में फ़ीस न दे पाने पर दलित पृष्ठभूमि के एक विद्यार्थी की पिटाई की गई जिसके चलते कुछ दिन बाद उसकी मौत हो गई; मध्य-प्रदेश के सिंगरौली ज़िले के एक सरकारी स्कूल की बारहवीं कक्षा की छात्राओं ने एक शिक्षिका पर जातिगत भाषा द्वारा अपमानित करने व पढ़ाने में भेदभाव बरतने के गंभीर आरोप लगाए गए; उत्तराखंड में जातिगत रूप से कुछ दबंग परिवारों द्वारा अपने बच्चों के स्कूल में दलित पृष्ठभूमि की महिला के हाथ का बना खाना लेने से इंकार कराने का उदाहरण सामने आया आदि।

विद्यालयों के ऊपर तो सामाजिक कुरीतियों के खिलाफ़ नई पीढ़ी को तैयार करने की ऐतिहासिक ज़िम्मेदारी होती है। सावित्री बाई जैसे शिक्षकों ने तो शिक्षा को जातीय और लैंगिक विषमताओं पर चोट करने का ज़रिया बनाया था। ऐसे में स्कूलों के संदर्भ में जातिगत हिंसा की प्रत्येक घटना और भयावह हो जाती है।

आख़िर क्यों हमारे विद्यालय जातिवाद के खिलाफ़ लड़ने के बजाय जातिवाद के गढ़ बन जाते हैं?

जातिगत बहिष्करण और हिंसा की जड़ें: सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक हैं

इतिहास गवाह है कि सदियों से बहुजनों के शरीर, श्रम और ज्ञान को लूटकर विशिष्ट समूहों ने अपने साम्राज्य खड़े किए हैं। शूद्रों और 'अछूतों' को यह सिखाया गया कि 'उनका जन्म अन्य तीन वर्णों की सेवा' के लिए हुआ है ताकि इनके लिए काम करते रहना को ही वो अपना धर्म समझें। उन्हें ज़मीन, औपचारिक शिक्षा तंत्र और औज़ारों से वंचित रखकर 'आश्रित' समुदायों में बदल दिया गया ताकि न वो आगे बढ़ सकें और न सेवकों की संख्या में कमी आए। उनके सामाजिक ज्ञान को बेकार बताकर 'वर्ण व्यवस्था' को ही 'ज्ञान' बना दिया गया ताकि ऊपर वाला ऊपर और नीचे वाला नीचे बना रहे। अवश्य ही यह आसान नहीं था इसलिए सदियों से इस उत्पीड़न को बनाए रखने के लिए राजशाही के बल और कानून के छल का इस्तेमाल होता आया है। इसी बाल और छल का हिस्सा थी वो 'आरंभिक शिक्षा व्यवस्था' जिसमें शिक्षा विशेष वर्गों के पुरुषों के लिए आरक्षित थी और जिसमें द्रोणाचार्य जैसे शिक्षक एकलव्य के अंगूठे की बलि लेकर वर्ण व्यवस्था को बचाना अपना धर्म समझते थे।

लेकिन आज भी शिक्षकों का एक बड़ा वर्ग इसी गुरु-शिष्य परम्परा के महिमामंडन से चिपका है और इसका गुणगान करता सुनाई देता है। हमारे स्टाफ रूम्स में खानपान की विविधता को लेकर पूर्वाग्रह मौजूद हैं, आरक्षण जैसे मुद्दों पर अनैतिहासिक समझ व्यापक है, विद्यार्थियों और उनके अभिभावकों को वज़ीफ़ों के संदर्भ में 'लालची' कहकर अपमानित किया जाता है, जातिगत टिप्पणियों को बर्दाश्त किया जाता है, कक्षा में असंवेदनशील ढंग से आरक्षित जातियों के बच्चों को सम्बोधित किया जाता है आदि। सच यह है कि हम शिक्षकों के अंदर भी वो सारी जातिगत-लैंगिक-सांप्रदायिक विषमताएँ मौजूद हैं जो बाकी समाज में व्याप्त हैं। हमें अपने अंदर और आसपास इन विषमताओं को खत्म करने के लिए लड़ना होगा।

हमारी शिक्षा व्यवस्था: वर्ण व्यवस्था का पुनरुत्पादन करती है

लेकिन यह केवल शिक्षक वर्ग का किया-धरा नहीं है; पूरी शिक्षा नीति और शिक्षा व्यवस्था इसकी दोषी है। बहुजन बच्चों की समान गुणवत्ता वाली शिक्षा पूरी होने में कई तरह के व्यवस्थागत अवरोध हैं, जैसे:

- पाठ्यचर्या से उन उद्धरणों को हटाया गया जो वर्ण व्यवस्था का सच उजागर करते थे: एनसीआरटी किताबों में छंटाई के नाम पर हटाए गए उद्धरण - कैसे जन्म से वर्ण निश्चित होता है, कैसे शूद्रों और महिलाओं को वेद सुनने की इजाज़त नहीं, कैसे कृषि उत्पादन में वृद्धि का आधार दास-दासियों के श्रम का उत्पीड़न था आदि। कक्षा 9 की इतिहास की किताब से ट्रेवनकोर की नादर महिलाओं के साथ पहनावे को लेकर हुई जातिगत हिंसा और उनके जवाबी आंदोलन के उद्धरण को हटाया गया। हमें यह पहचानना होगा कि ये कौन-सी ताकतें हैं जिन्हें जातिगत संघर्ष के उदाहरण इतना डराते हैं कि वे युवाओं को इनसे रू-ब-रू नहीं होने देना चाहते। एक प्रबुद्ध समाज अपनी विरासत में मौजूद उत्पीड़न एवं अन्याय को पहचानता, स्वीकारता और उसकी माफ़ी माँगता है, नाकि छिपाता है। ऐसे में हमें अपनी पाठ्यचर्या के न्यायप्रिय तत्वों को बचाने के लिए लड़ना होगा।
- बहुजन बच्चों का शिक्षा पूरी करना मुश्किल किया: आज भी कक्षा 8 के बाद स्कूल छोड़ने वाले बच्चों में सबसे ज़्यादा अनुपात वंचित वर्गों से आने वाले बच्चों का है (बिंदु 6.2.1, एनईपी 2020)। एक तरफ सरकारी स्कूलों के बच्चों पर फ़ीस का बोझ बढ़ता जा रहा है (बोर्ड परीक्षा के नाम पर सीबीएसई ने कई गुना फ़ीस बढ़ाई) और दूसरी तरफ आरक्षित जातियों को दी जाने वाली फ़ीस रियायत का दर घटा है। कक्षा 9-12 में सरकारी स्कूल भी अपने परिणाम चमकाने के लिए 'कमज़ोर' बच्चों के नाम काटकर उन्हें ओपन में भेजने में लगे हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति भी कक्षा 3, 5, 8 तक में ओपन से पढ़ाई करवाने को बल देती है और खर्च बचाने के लिए सरकारी स्कूल मर्ज/बंद करने की कवायद करती है जिसका खामियाज़ा सबसे पहले सबसे कमज़ोर तबके के बच्चों को उठाना होगा।

- दमित जातियों को वजीफ़े न देने के लिए एनईपी 2020 कई हथकंडे अपनाती है: एक तरफ केंद्र सरकार ने वजीफों का बजट घटाया है और दूसरी तरफ आवेदन की प्रक्रिया को जटिल बनाकर बच्चों की पहुँच से दूर कर दिया गया है। उदाहरण : (क) शिक्षा विभाग से प्राप्त एक जानकारी के अनुसार दिल्ली सरकार के स्कूलों में कक्षा 9-12 में नामांकित विद्यार्थियों में से 15.3% विद्यार्थी SC (पृष्ठभूमि के) हैं, 7.2% OBC (पृष्ठभूमि के) हैं और 0.22% ST (पृष्ठभूमि के) हैं। यानी, इन आँकड़ों के हिसाब से, एक-चौथाई से भी कम विद्यार्थी इन वंचित जाति-समूहों से हैं, जबकि सच्चाई यह है कि जाति प्रमाण-पत्र न बनवा पाने के कारण अधिकतर बहुजन बच्चे स्कूलों में अदृश्य कर दिए जाते हैं और उन तक उनके हक़ नहीं पहुँचते। (ख) दिल्ली में 2021-22 में कक्षा 11-12 में केवल 17.12% SC लड़कियाँ ही पोस्ट मेट्रिक स्कॉलरशिप का ऑनलाइन आवेदन कर पाईं और इनमें से 41% लड़कियों का आवेदन आय प्रमाण-पत्र की कमी के कारण नामंज़ूर हो गया। अंततः केवल 10.1% SC छात्राओं को पोस्ट मेट्रिक वजीफा मिला। आज यह सच शिक्षकों के बीच आम हो गया है कि क्योंकि सरकार वजीफ़े देना नहीं चाहती इसलिए नित नयी शर्तें जोड़ती जा रही है।

- 'लायक' को छाँटकर विज्ञान और रोबोटिक्स पढ़ाने और बाकियों को वापस 'पारम्परिक कामों' में धकेलने वाली दोगली पढ़ाई कराई जा रही है : आज भी अंग्रेज़ी माध्यम सैक्शन में तथा कक्षा 11 में विज्ञान के सैक्शन में SC/ST/OBC पृष्ठभूमि के बच्चों का अनुपात कम दिखाई पड़ता है जो इस वास्तविकता की गवाही देता है कि शिक्षा की सीढ़ियाँ चढ़ने में आज भी वर्णगत पृष्ठभूमि की भूमिका महत्वपूर्ण है। एक तरफ राष्ट्रीय शिक्षा नीति चाहती है कि बच्चे कक्षा 10 के बाद अकादमिक पढ़ाई छोड़कर वोकेशनल शिक्षा में जाएँ और दूसरी तरफ दिल्ली सरकार 'नौकरी देने वाले बनो' के नाम पर बच्चों को वापस उन्हीं जातिगत काम-धंधों में भेज रही है जिनसे निकलने के लिए वे शिक्षा लेने स्कूल आए थे। ये कौन-सी पृष्ठभूमियों के बच्चे होंगे जो डॉक्टर-इंजीनियर-वकील-प्रोफेसर बनेंगे जिनकी कोर्स फ़ीस लाखों में जाती है? और वे कौन-सी पृष्ठभूमियों के बच्चे होंगे जो मैकेनिक, पार्लरवाले, ज़ोमाटो, ऑटो वाले बनेंगे?

- शिक्षक पदोन्नतियों में सामाजिक न्याय को कमज़ोर करना : अभी तक शिक्षकों की पदोन्नतियों के लिए अनुभव की वरीयता, अकादमिक योग्यता व सामाजिक न्याय के स्थापित व वैधानिक प्रावधान इस्तेमाल होते थे। लेकिन एनईपी 2020 इनकी जगह 'समर्पण' व 'मेरिट' जैसे कारकों को प्रस्तावित करती है जिसका सीधा मतलब है जातिगत काँट-छाँट की वापसी। आख़िर कौन यह तय करेगा कि कौन-सा शिक्षा समर्पित है और कौन नहीं? संभव है कि न्याय से ज़्यादा सत्ता के प्रति समर्पण को पुरस्कृत किया जाए। जातिगत उत्पीड़न को ढाँकने के लिए यह नीति दमित जातियों को साफ़गोई से संबोधित न करके SDG (सोशली डिसअडवांटेज्ड ग्रुप) जैसी भ्रामक शब्दावली का इस्तेमाल करती है। निजी विद्यालयों को बढ़ावा देती है और ऊपर से उनमें सामाजिक न्याय के अनुसार आरक्षित जातियों से शिक्षकों की नियुक्तियाँ करने के प्रावधान डालने की बात नहीं करती।

अगर शिक्षा में जातिगत भेदभाव व्यस्थागत है तथा राज्य के संरक्षण में फल-फूल रहा है तो इसके खिलाफ़ हमारी लड़ाई भी सामूहिक और व्यवस्थित होनी होगी।

हमारी लड़ाई : शिक्षकों की भूमिका

अगर हम, दिल्ली के शिक्षक राजस्थान की इस घटना का भरसक विरोध करते हैं तो हमारे अपने व्यवहार और स्कूलों में जातिगत भेदभाव, छींटाकशी और अन्याय के अनगिनत रूपों को पहचानना, उजागर करना और उन्हें ख़त्म करने के लिए संघर्ष करना भी हमारा कर्तव्य है। शिक्षक होने के नाते हमारी भूमिका शिक्षा के माध्यम से जातिगत भेदभाव व अपमान-हिंसा की संस्कृति को चुनौती देने तथा विद्यार्थियों में इस चेतना को गढ़ने की है। अन्यथा हम कितनी भी आलोचना कर लें या दुःख जताएँ, ऐसी क्रूर घटनाएँ रुकेंगी नहीं, बल्कि नियमित ख़बर की तरह एक-के-बाद-एक सामने आती रहेंगी। हम माँग करते हैं कि -

i. राजस्थान सरकार जालोर के सुराणा गाँव के सरस्वती विद्या मंदिर नामक निजी स्कूल में जातिगत हिंसा के शिकार हुए छात्र इंद्र कुमार मेघवाल के परिवार की सुरक्षा व पूर्ण स्वतंत्रता सुनिश्चित करे तथा उन्हें उचित मुआवज़ा प्रदान करे।
ii. हिंसा की निष्पक्ष जाँच सुनिश्चित करते हुए क़ानूनसम्मत कार्रवाई की जाए। iii. राजस्थान सरकार हिंसा के स्थल रहे उक्त स्कूल सहित तमाम निजी स्कूलों को अपने अधीन लेकर मुफ़्त शिक्षा सुनिश्चित करने वाली सार्वजनिक व्यवस्था में लाए तथा सामाजिक न्याय के प्रावधानों के अनुसार शिक्षकों की नियुक्तियाँ करे।
iv. सभी स्कूलों को जातिगत भेदभाव व सूक्ष्म अथवा परोक्ष हिंसा के ख़िलाफ़ सतर्क रहने व शिकायत मिलने पर उसे दर्ज करने के दिशा-निर्देश जारी किए जाएँ।
v. राज्यों से लेकर केंद्र के स्तर तक पाठ्यक्रमों में वर्ण व्यवस्था को जायज़ ठहराने व जातिगत विषमता के ख़िलाफ़ उठी धाराओं व आवाज़ों को हटाने/विकृत करने की प्रक्रिया को ख़ारिज किया जाए।
vi. विद्यार्थियों के लिए सामाजिक न्याय पर आधारित वज़ीफ़ों व अन्य ज़रूरी सहायता सामग्री/राशि के दायरे का विस्तार करते हुए इनकी प्रक्रिया को सहज-सुलभ बनाया जाए।
vii. सामाजिक न्याय विरोधी राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 को रद्द किया जाए। सार्वजनिक स्कूलों को बर्बाद व बंद करने अथवा उनका परोक्ष निजीकरण करने की नीति को पलटा जाए।

(साभार: लोक शिक्षक मंच)

*****

भारत में बड़े पैमाने पर स्कूलों को बंद करने से लाखों छात्र बेबस हैं।

-जोहाना दीक्षा और मालिनी सुब्रमण्यम

31 मई, 2022 को केरल के पलक्कड जिले के एक तालुक, अट्टापडी, के एक सरकारी स्कूल में दो शिक्षक प्रिंसी कुमार और प्रभु राज व्यस्त दीख रहे थे। लेकिन कुमार और राज पढ़ा नहीं रहे थे। वे एक कक्षा में इकट्ठे हुए अपने छात्रों और उनके माता- पिता के साथ हँस-बोल रहे थे।

माता-पिता में से एक ने एक बड़ा केक लाया और उसे एक मेज पर रख दिया। "क्योंकि यह हमारा आखिरी दिन है," कुमार ने मुस्कुराते हुए कहा।

यह शैक्षणिक वर्ष का आखिरी दिन नहीं था - वास्तव में, हरे-भरे जंगलों के बगल में एक पहाड़ी के किनारे अवस्थित स्कूल तकनीकी रूप से छुट्टी पर था। लेकिन यह आखिरी मौका था, जब स्कूल से लगभग सौ मीटर के भीतर रहनेवाले छात्र और शिक्षक एक साथ मिल रहे थे। अगले महीने नए शैक्षणिक वर्ष की शुरुआत के साथ स्कूल में नामांकित 17 बच्चे पाँच किलोमीटर दूर सरकारी स्कूल में एक साथ मिलेंगे। यह आखिरी दिन था, जब वे सभी एक साथ खुशी मना रहे थे।

यह एक एकल-शिक्षक स्कूल था, जिसे मल्टीग्रेड लर्निंग सेंटर या एम जी एल सी के रूप में भी जाना जाता है और इसे 2004 में स्थापित किया गया था। केरल सरकार ने मार्च 2022 में घोषणा की कि 1990 के बाद से स्थापित सभी 354 मल्टीग्रेड स्कूल बंद हो जाएंगे। ऐसा इसलिए था क्योंकि उन्हें केंद्र सरकार से फंड मिलना बंद हो गया था । पहले तो राज्य सरकार ने इन स्कूलों को औपचारिक प्राथमिक स्कूलों में बदलने का फैसला किया था, ताकि ये फंड के लिए पात्र होते। लेकिन ये प्रयास असफल साबित हुए और मई 2022 के अंत में स्कूलों को आधिकारिक रूप से बंद कर दिया गया।

स्कूलों को "युक्तिसंगतता" या 'माकूलियत' की एक राष्ट्रीय नीति के हिस्से के रूप में बंद कर दिया गया था जिसे पिछले एक दशक में लागू किया गया है और कम नामांकन दर वाले स्कूलों को लक्षित किया गया है, या जो एकल शिक्षकों द्वारा चलाए जा रहे हैं। नीति के मुख्य उद्देश्यों में यह सुनिश्चित करना शामिल था कि संसाधनों का अधिक प्रभावी ढंग से उपयोग किया गया था। लेकिन अट्टापडी के जंगलों- जैसे दूरदराज के इलाकों में सैकड़ों-हजारों छात्रों के लिए इसका मतलब था कि शिक्षा तक पहुंचना काफी कठिन हो गया है।

"नया स्कूल 20 किलोमीटर से अधिक दूर है," 28 वर्षीय देवी मुरुगन ने कहा, जो एक अट्टापडी तालुक के एक अन्य गांव में रहती है और जिसका बेटा अपने घर के ठीक पीछे स्थित एक मल्टीग्रेड स्कूल में कक्षा 3 में स्कूल बंद होने के पहले पढ़ रहा था। उन्होने फिर कहा, "बंद होना निश्चित रूप से हमारे गांव के लोगों के लिए एक झटका है।"

जिन स्कूलों को अक्षम माना गया था, उन्हें बंद करने की प्रक्रिया युक्तिकरण की नीति लागू होने से पहले ही शुरू हो गई थी। विडंबना यह है कि 2009 में शिक्षा का अधिकार अधिनियम के पारित होने से देश भर में स्कूलों को बंद करने का मार्ग प्रशस्त हुआ, क्योंकि राज्यों ने नियमों की अपनी-अपनी व्याख्या की। इस अधिनियम ने स्कूलों के कामकाज के बारे में कई नियम निर्धारित किए, जिनमें कुछ शिक्षक-छात्र अनुपात से संबंधित हैं। कई स्कूल, सरकारी और निजी दोनों, जो इन विशिष्टताओं को पूरा नहीं करते थे, बंद कर दिए गए।

अखिल भारत शिक्षा अधिकार मंच द्वारा संकलित आंकड़ों के अनुसार, इस प्रक्रिया के परिणामस्वरूप 2011 से 2015 के बीच लगभग एक लाख स्कूल बंद कर दिए गए थे।

ग्रामीण और आदिवासी क्षेत्रों में स्कूल, जैसे कि अट्टापडी में, सबसे अधिक प्रभावित हुए हैं, पहले शिक्षा का अधिकार अधिनियम के कारण, फिर युक्तिकरण के कारण। शिक्षा मंत्रालय के आंकड़ों के अनुसार, 2012-'13 में, राज्य आदिवासी कल्याण विभागों के तहत 76,960 स्कूल पंजीकृत थे। यह 2020-'21 तक घटकर 46,329 हो गए, जो लगभग 40% की कमी है। सरकार द्वारा संचालित प्राथमिक विद्यालयों की संख्या 2012-'13 में 8,63,612 से गिरकर 2021 में 7,74,742 हो गई, जो 10% की गिरावट है।

इसकी तुलना में, निजी गैर-सहायता प्राप्त स्कूलों की संख्या 2,58,107 से बढ़कर 3,40,753 हो गई, जो 32% की वृद्धि है; जबकि सरकारी सहायता प्राप्त निजी स्कूलों की संख्या 79,918 से बढ़कर 84,295 हो गई, जो 5% की वृद्धि है।

केरल ने 1990 के दशक में मल्टीग्रेड केंद्र स्थापित करना शुरू कर दिया था। प्रत्येक में आम तौर पर एक कमरा होता था, जिसमें कक्षा एक और चार के बीच के छात्रों का एक मिश्रित समूह इकट्ठा होता था। आमतौर पर, एक शिक्षक सरकार द्वारा प्रदान की गई सामग्री की मदद से छात्रों को निर्देश देता था। अधिकांश ऐसे केंद्र राज्य के दूरदराज के इलाकों में स्थित थे, जहां पहुंचना मुश्किल था - जैसे कि अट्टापडी और अन्य वन क्षेत्रों में। कक्षा 5 के बाद छात्रों को निकटतम औपचारिक सरकारी स्कूल में जाना होता था।

अन्य बातों के अलावा, मल्टीग्रेड केन्द्रों की सीमाओं और कथित अक्षमता के लिए आलोचनाएँ हुई थीं, लेकिन इन स्कूलों में पढ़ाने वाले कई शिक्षकों ने भविष्यवाणी की थी कि बंद होने से स्कूल छोड़ने की दर में वृद्धि होगी।

स्क्रॉल.इन(एक स्वतंत्र website) ने पाया कि छत्तीसगढ़ जैसे राज्यों में वास्तव में ऐसा हुआ था। 2015 में राज्य भर में 2,295 प्राथमिक विद्यालयों, 553 माध्यमिक विद्यालयों, 34 उच्च विद्यालयों और 27 उच्च माध्यमिक विद्यालयों सहित 3,526 स्कूलों को 'युक्त-युक्तिकरण योजना', या स्कूल युक्तिकरण योजना के तहत पड़ोसी स्कूलों में मिला दिया गया था। कई गांवों में, निवासियों ने स्क्रॉल डॉट इन को बताया कि आस-पास के स्कूलों को बंद कर दिए जाने के बाद और दूर के

स्कूलों में विलय कर दिए जाने के बाद, बच्चों के लिए स्कूल जाना जारी रखना अव्यावहारिक हो गया। फलतः उनका स्कूल छूट गया।

छत्तीसगढ़- जैसे राज्यों में पिछले कुछ वर्षों में पैदा हुई समस्याओं के बावजूद, केरल के शिक्षकों ने सुना होगा कि सरकार राज्य के मल्टीग्रेड केंद्रों को बंद करने पर विचार कर रही है। इस साल, मार्च में, वही अटकलें फिर से फैल गईं। मई के अंतिम सप्ताह में शिक्षकों से कहा गया था कि वास्तव में केंद्र बंद कर दिए जाएंगे। शिक्षकों को अपने छात्रों को स्थानांतरण प्रमाण पत्र जारी करने के लिए कहा गया, ताकि वे निकटतम औपचारिक सरकारी स्कूल में शामिल हो सकें।

शिक्षकों का जीवन भी अस्त-व्यस्त हो गया। कई शिक्षक अब पाते हैं कि वे अब पढ़ाना जारी नहीं रख सकते। ऐसा इसलिए है क्योंकि मल्टीग्रेड केंद्रों में पढ़ाने के लिए उन्हें केवल 10वीं कक्षा तक पढ़ाई करने की जरूरत है। अब दूसरे स्कूलों में पढ़ाने के लिए उन्हें कॉलेज की डिग्री और टीचर एलिजिबिलिटी टेस्ट सर्टिफिकेट की जरूरत होगी।

जिन शिक्षकों को नई नौकरी की जरूरत है, वे अन्य सरकारी नौकरियों के लिए फिर से आवेदन कर रहे हैं, लेकिन उनके लिए उपलब्ध पद चपरासी और सफाईकर्मी के हैं। 'यह दिल दहला देने वाला है कि दो दशकों से अधिक समय तक शिक्षक के रूप में काम करने के बाद, मुझे अब एक स्वीपर के रूप में काम करना है,' विजयता ने कहा, जो 22 वर्षों से एक अन्य अट्टापडी गांव में एक मल्टीग्रेड सेंटर में पढ़ाती है। (इस कहानी के लिए शिक्षकों और छात्रों के नाम बदल दिए गए हैं, क्योंकि शिक्षकों को डर था कि अगर उनकी पहचान की गई तो नौकरी के लिए उनके आवेदन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा।) "लेकिन मेरी शादी देर से हुई और मेरे दो बच्चे हैं जो अभी भी पढ़ रहे हैं," विजयता ने कहा। "तो मेरे पास सरकार द्वारा मुझे जो कुछ भी पेशकश की जाती है उसे लेने के अलावा कोई विकल्प नहीं है।"

भारत में एकल-शिक्षक स्कूलों की जड़ें 1994 में शुरू किए गए राष्ट्रीय जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम में हैं । ज़िला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 में निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए तैयार किया गया था और 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति को इसी संदर्भ में 1992 में अद्यतन किया गया था। इनमें 14 वर्ष की आयु तक के बच्चों के लिए "शिक्षा की गुणवत्ता में पर्याप्त सुधार", "सार्वभौमिक पहुंच और नामांकन" के लक्ष्य शामिल थे। यह कार्यक्रम शुरू में असम, मध्य प्रदेश और केरल सहित सात राज्यों के 42 जिलों में शुरू किया गया था। पिछले कुछ वर्षों में इसका विस्तार हुआ और 2001 तक देश भर के 248 जिलों को इस कार्यक्रम के दायरे में लाया गया।

यह जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम के तहत था कि केरल ने दूरदराज के क्षेत्रों में रहने वाले छात्रों को शिक्षित करने के लिए राज्य भर में मल्टीग्रेड केंद्रों की कल्पना की और स्थापित किया।

मध्य प्रदेश और आंध्र प्रदेश जैसे अन्य राज्यों ने भी इसी तरह के कार्यक्रम शुरू किए। यूनेस्को की 2021 की रिपोर्ट के अनुसार, भारत में 1,10,971 एकल-शिक्षक विद्यालय थे, जिनमें से 89% ग्रामीण क्षेत्रों में थे।

2001 में जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम की जगह सर्व शिक्षा अभियान ने प्रारंभिक शिक्षा के लिए मार्गदर्शक कार्यक्रम के रूप में जगह ली। केरल में मल्टीग्रेड सेंटर और अन्य राज्यों में इसी तरह के स्कूल नए कार्यक्रम के तहत स्थापित और संचालित होते रहे।

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में शिक्षा के समाजशास्त्र के प्रोफेसर एस. श्रीनिवास राव ने कहा कि हालांकि ये एकल-शिक्षक स्कूल, विशेष रूप से दूरदराज के क्षेत्रों में, बहुत ही बुनियादी थे, आमतौर पर सिर्फ एक कमरा वाले स्कूल। इन स्कूलों ने छात्रों को कम-से-कम एक स्कूल का एहसास कराया।

2009 में सरकार ने शिक्षा का अधिकार अधिनियम पारित किया, जिसमें कहा गया कि जहां भी आवश्यक हो, राज्य को 6 से 14 वर्ष की आयुवर्ग के सभी पृष्ठभूमि के छात्रों को मुफ्त शिक्षा प्रदान करानी होगी।

अपने प्रशंसनीय उद्देश्यों के बावजूद, अधिनियम ने स्कूलों के लिए नियम भी निर्धारित किए, जिनमें से कुछ काफी भ्रम का कारण थे। कुछ नियम छात्र-शिक्षक अनुपात से संबंधित हैं: अधिनियम में कहा गया है कि "साठ तक" बच्चों वाली कक्षाओं के लिए, एक स्कूल में दो शिक्षक होने चाहिए।

प्रो राव कहते हैं कि इसका मतलब यह हो सकता है कि 10, 20 या 60 तक छात्रों के लिए दो शिक्षक हो सकते हैं, क्योंकि अधिनियम में 'तक' कहा गया है।

लेकिन नियम ने कम संख्या में छात्रों वाले स्कूलों के लिए पेचीदगी पैदा कर दी। राव ने कहा, "राज्य सरकारों ने इसे इस तरह से समझा है कि हर 30 छात्रों पर एक शिक्षक है।" यानी कि प्रत्येक शिक्षक को कम से कम 30 छात्रों को पढ़ाना है। फलतः कम छात्रों वाले स्कूल बंद होने लगे और अन्य स्कूलों में विलय हो गए।

2017 के बाद से अब तक सर्व शिक्षा अभियान के तहत स्कूल एक नई नीति के तहत बंद होते रहे, जिसे "तर्कसंगतता" के रूप में जाना जाता है। एक दिशा-निर्देश के दस्तावेज़ में शिक्षा मंत्रालय ने कहा कि उसे "अतिरिक्त स्कूल, शून्य नामांकन वाले स्कूल, बहुत कम नामांकन वाले स्कूल, एक ही इमारत / बस्ती या आसपास के एक से अधिक स्कूलों का अस्तित्व आदि जैसी समस्याओं से निपटने की आवश्यकता है।" इसने युक्तिकरण की प्रक्रिया के माध्यम से "विद्यालयों के राष्ट्रव्यापी समेकन" की सिफारिश की।

यह तर्क दिया गया कि उपलब्ध संसाधनों(बुनियादी ढाँचा, शिक्षक) से सीखने के निम्न-स्तरीय बहुकक्षा शिक्षण को न्यूनतम किया जाएगा। दस्तावेज़ ने तर्क दिया कि युक्तिकरण "न केवल बेहतर शिक्षण-अधिगम वातावरण प्रदान करेगा, बल्कि स्कूलों को आर टी ई के अनुरूप भी बनाएगा"।

स्कूलों को बंद करने के इन कदमों ने देश भर के राज्यों पर प्रतिकूल प्रभाव डाला है।

अगस्त 2014 में राजस्थान राज्य सरकार ने 17,158 स्कूलों को 13,565 स्कूलों में विलय करने के आदेश जारी किए। रातोंरात राज्य में लगभग 3,593 स्कूल बंद कर दिए गए। राज्य सरकार ने बंद होने के पीछे कम नामांकन का कारण बताया। हालांकि, इस फैसले से विधानसभा में गरमागरम बहस हुई। नीति निर्माताओं के एक वर्ग ने इस फैसले की आलोचना की और भविष्यवाणी की कि इसका स्कूली बच्चों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ेगा। बाद में एक अध्ययन में पाया गया कि बंद स्कूलों के एक तिहाई छात्रों ने विलय के बाद पढ़ाई छोड़ दी थी।

2018 में कर्नाटक सरकार ने घोषणा की कि उसने अपने 3,450 एकल-शिक्षक स्कूलों को आस-पास के स्कूलों में विलय करने की योजना बनाई है, जिनमें छात्रों की संख्या अधिक थी। उसी वर्ष, हिमाचल प्रदेश ने यह भी कहा कि वह 1,410 एकल-शिक्षक स्कूलों को बड़े स्कूलों में विलय करने पर विचार कर रहा है। इस बीच, गुजरात ने 491 एकल-शिक्षक स्कूलों को बड़े स्कूलों में मिला दिया।

“यह दिल दहला देने वाला है कि दो दशकों से अधिक समय तक शिक्षक के रूप में काम करने के बाद मुझे अब एक स्वीपर के रूप में काम करना है,” विजयता ने कहा, जो 22 वर्षों से अट्टापडी गांव में एक मल्टीग्रेड सेंटर में पढ़ाती है। (इस कहानी के लिए शिक्षकों और छात्रों के नाम बदल दिए गए हैं, क्योंकि शिक्षकों को डर था कि अगर उनकी पहचान की गई तो नौकरी के लिए उनके आवेदन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा।) "लेकिन मेरी शादी देर से हुई और मेरे दो बच्चे हैं

जो अभी भी पढ़ रहे हैं। सरकार द्वारा मुझे जो कुछ भी पेशकश की जाती है, उसे लेने के अलावा मेरे पास कोई विकल्प नहीं है।" विजयता ने कहा।

तेलंगाना, राजस्थान और ओडिशा में सार्वजनिक शिक्षा प्रणाली पर स्कूल विलय और बंद होने के प्रभाव पर 2017 के एक पेपर में तर्क दिया गया कि इस प्रक्रिया ने "शिक्षा के अधिकार का उल्लंघन" किया। इसमें कहा गया है कि इस नीति ने कुछ स्कूलों के बच्चों को इस तर्क का उपयोग करते हुए शिक्षा से वंचित कर दिया क्योंकि उनका नामांकन कम था। शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार के नाम पर बच्चों के पड़ोस से दूर अन्य स्कूलों के साथ उनका विलय कर दिया गया।

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के प्रोफेसर एस. श्रीनिवास राव इस पत्र के प्रमुख अन्वेषक थे। उन्होंने स्क्रॉल डॉट इन को बताया कि पिछले दस वर्षों में विभिन्न नागरिक समाज समूहों ने अपने राज्यों में सरकारों से स्कूलों के विलय को रोकने का आग्रह किया था।

राव ने कहा, "सरकार छोटे स्कूलों को कारगर नहीं मानती है।" "लेकिन वह देखने में विफल रहती है कि बहुत से गाँव बहुत बिखरे हुए हैं और बहुत कम आबादी वाले हैं, जिनमें बहुत कम संख्या में घर हैं।" उन्होंने कहा, "ये बच्चे कहाँ जाएंगे?"

राव ने स्वीकार किया कि एक अकेले शिक्षक के लिए एक स्कूल का प्रबंधन करना मुश्किल था। लेकिन कम- से- कम तब बच्चों को एक शिक्षक, एक कक्षा, मध्याह्न भोजन तो था। जब ये स्कूल उनके अपने क्षेत्रों में खुल गए तो बहुत सारे बच्चे ने मजदूरी करनी छोड़ दी। इन स्कूलों ने विशेष रूप से बालिकाओं की शादी की उम्र टालने में मदद की।

हालांकि नीति निर्माताओं ने यह मान लिया था कि युक्तिकरण के बाद बड़े सरकारी स्कूलों में नामांकन बढ़ेगा। राव ने कहा कि उन्होंने पाया है कि स्कूल विलय के बाद ड्रॉप-आउट दरों में वृद्धि हुई है। यह एक बहुत ही अदूरदर्शी नीतिगत कदम है।

2017 के पेपर में बंद और विलय के बारे में सवालों के जवाब में विशेष स्कूलों के बच्चों के जवाब भी शामिल थे। राजस्थान के एक स्कूल के बच्चों से पूछा गया कि उनके स्कूल का दूसरे स्कूल में विलय होने के बाद उनके कितने साथियों ने पढ़ना जारी रखा, तो एक बच्चे ने जवाब दिया कि केवल आधे ने ही ऐसा किया है। अखबार ने कहा, "इन बच्चों से पूछा गया था कि अगर उनके गांव में स्कूल चल रहा होता तो क्या ये ड्रॉपआउट होते।" "बच्चे सहमत थे कि वे अपने पुराने स्कूल में पढ़ाई जारी रखते।"

स्क्रॉल.इन की ग्राउंड रिपोर्टिंग ने यह भी सुझाव दिया कि बंद होने से छात्रों के लिए काफी मुश्किलें पैदा होंगी। केरल में कई बच्चों ने कहा कि वे ऐसे स्कूल में जाना पसंद करेंगे जो उनके घर के नजदीक हो। कुछ छोटे बच्चों, जिन्होंने हाल ही में मल्टीग्रेड केंद्रों से पास किया था और नए स्कूलों में शामिल हुए थे, ने कहा कि उन्होंने अपने पुराने स्कूल को अपने नए बच्चों के लिए पसंद किया, जो स्कूल से बाहर थे।

आलोचना के बावजूद, सरकार ने युक्तिकरण की प्रक्रिया को दोगुना कर दिया है। नई शिक्षा नीति, 2020 ने भी इस प्रक्रिया की सिफारिश की। इसने दावा किया कि अन्य लाभों के साथ युक्तिकरण यह सुनिश्चित करेगा कि बहुत छोटे स्कूलों के शिक्षक अब अलग-थलग नहीं रहेंगे और बड़े स्कूल जटिल समुदायों का हिस्सा बन सकते हैं और उनके साथ काम कर सकते हैं।"

स्कूलों को मर्ज करने के लिए उठाए गए कदमों से बच्चों को स्कूलों में जाने के लिए कई बाधाओं को नज़रअंदाज़ किया जाता है। इनमें सबसे प्रमुख है परिवहन की समस्या। केरल सरकार ने "गोथरा सारथी" नामक एक योजना शुरू करके इस समस्या का समाधान करने की कोशिश की। यह योजना दूरदराज के इलाकों में बच्चों के लिए स्कूलों को परिवहन प्रदान करती है।

लेकिन यह उन माता-पिता के डर को शांत नहीं करता है जिनके बच्चों को अब बहुत दूर की यात्रा करनी होगी। वायनाड के एक पिता ने कहा कि जो बच्चे पांचवीं और उच्चतर कक्षा में हैं, उन्हें कोई समस्या नहीं है। “लेकिन हम कक्षा 1 के छात्रों को इतनी दूर जीप पर कैसे भेजेंगे और जब बारिश होगी तो क्या होगा?" उसने पूछा।

वायनाड और अट्टापडी दोनों भी बड़े भूस्खलन के शिकार हैं जहाँ भूस्खलन लगभग हर साल होते हैं। "यहाँ बारिश बहुत होती है," पिता ने कहा। “अगर स्कूल पास में होता, तो वे उसके पास दौड़ते। अब हमें कैसे पता चलेगा कि वे सुरक्षित पहुंचेंगे?”

केरल के मल्टीग्रेड केंद्रों के शिक्षकों ने कहा कि बच्चों को स्कूलों तक पहुंचाने में उन्होंने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। “माता-पिता, विशेष रूप से दैनिक वेतन भोगी, सुबह जल्दी घर से निकल जाते हैं। इसलिए हम ही हैं जो बच्चों को स्कूल ले जाते हैं, ”वायनाड के 45 वर्षीय शिक्षक सुरेंद्रन ने कहा। अब स्कूल पाँच किमी से अधिक दूर है । अगर उनकी बस छूट जाती है, तो बस। उस दिन उनके लिए कोई स्कूल नहीं। उन्होंने कहा कि छात्रों के पास स्कूल जाने का कोई रास्ता नहीं है, क्योंकि यह इलाका जंगल है और उनके लिए असुरक्षित है।

यह केवल दूरी की समस्या नहीं थी, जैसा कि 2017 के पेपर में बताया गया है, बल्कि प्राकृतिक बाधाओं की भी है। अखबार ने कहा, "न केवल दूरी बल्कि खेतों, पहाड़ियों, नदियों, नहरों और जंगलों जैसे प्राकृतिक अवरोध इन बस्तियों के आसपास के परिदृश्य का निर्माण करते हैं।"

जंगली जानवर भी चिंता का विषय थे। सुरेंद्रन ने कहा, "अभी दो दिन पहले, इसी क्षेत्र में एक हाथी से बचने की कोशिश करते हुए एक महिला ने अपना पैर तोड़ लिया था।"

अट्टापडी में इरुलर जनजाति के एक 45 वर्षीय कार्यकर्ता रामू के.ए. ने बताया कि वह बचपन में हर दिन आठ किमी पैदल चलकर अपने स्कूल जाता था। रामू का परिवार अट्टापदी में एक पहाड़ी के ऊपर एक गाँव में रहता था और सरकारी स्कूल पहाड़ी के तल पर स्थित था। इसलिए घर पर चढ़ने में उसे अधिक समय लगता था। जब स्क्रॉल.इन ने गाँव के पास के मल्टीग्रेड स्कूल (वहीं जहाँ प्रिंसी कुमार और प्रभु राज पढ़ाते थे) का दौरा किया, तो सड़क के कुछ हिस्से इतने खस्ताहाल थे कि कार भी हिलने-डुलने के लिए संघर्ष कर रही थी।

विडंबना यह है कि कुछ साल पहले रामू और उनके सहयोगियों ने इन मल्टीग्रेड स्कूलों का यह तर्क देते हुए विरोध किया था कि वे खराब गुणवत्ता वाले हैं। “आदिवासी छात्रों की शिक्षा की गुणवत्ता बाकी की तुलना में कम क्यों होनी चाहिए? हमारे स्कूल दूसरों से अलग क्यों होने चाहिए?” रामू ने कहा। उसने मांग की कि इन मल्टीग्रेड स्कूलों को उचित प्राथमिक स्कूलों में बदल दिया जाए। हालाँकि, उन्होंने सरकार से स्कूलों को पूरी तरह से बंद करने की उम्मीद नहीं की थी या वे ऐसा नहीं चाहते थे। उन्होने कहा कि सरकार को इन स्कूलों के मानकों में सुधार करना था और अब बच्चों को स्कूल जाने के लिए लंबी दूरी तय करने के लिए मजबूर करना अनुचित था।

स्कूलों के विलय ने उन सामाजिक बाधाओं को भी बढ़ा दिया जिनका सामना कुछ बच्चों को शिक्षा प्राप्त करने में करना पड़ा। “अन्य कारक, जैसे जाति की गतिशीलता, भी इस खेल में आते हैं। दलित बस्तियों के बच्चे उच्च जाति के गांव में स्थित मर्ज किए गए स्कूल में जाने से हिचकिचाते हैं,” 2017 के पेपर में कहा गया है।

सेंटर फॉर पॉलिसी रिसर्च द्वारा 2019 में प्रकाशित एक अन्य पेपर में राजस्थान में स्कूल संविलियन के कार्यान्वयन और अल्पकालिक प्रभावों पर इसी तरह का अवलोकन किया गया और पाया गया कि कि संविलियन के बाद अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति समुदायों के बीच स्कूल नामांकन में कमी आई थी। लेखकों ने उल्लेख किया कि बच्चों के बड़े स्कूलों में जाने के बाद उनके पास बिजली, परिसर की दीवारों, खेल के मैदानों और पुरुष और महिला छात्रों के लिए अलग-अलग शौचालय जैसी कुछ सुविधाओं तक बेहतर पहुंच थी।

हालांकि, यह भी नोट किया गया: "राज्य भर के सभी सरकारी स्कूलों की तुलना में समेकित स्कूलों में नामांकन में अधिक गिरावट आई है। नामांकन में गिरावट विकलांग छात्रों के लिए सबसे अधिक है। इसके बाद अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के छात्रों का नंबर आता है।

केरल के आंकड़ों से भी पता चलता है कि हाशिए के समूहों के छात्र अनुपातहीन रूप से अधिक संख्या में स्कूल छोड़ देते हैं। 2014 में वायनाड जिले में ड्रॉपआउट्स पर प्रकाशित एक पेपर के अनुसार, राज्य के सभी ड्रॉपआउट्स में वर्ष 2011-12 में 77% आदिवासी छात्र थे।

यह आदिवासी समुदायों के छात्रों के शिक्षा स्तर को प्रभावित करता है। केरल में आदिवासी समुदायों की शिक्षा पर 2020 के एक पेपर ने निष्कर्ष निकाला कि साक्षरता दर में सामान्य वर्ग और आदिवासी छात्रों के बीच 18% का अंतर था। रामू ने तर्क दिया कि इन स्तरों पर बहिष्कार का उस राज्य में दूरगामी प्रभाव पड़ा जो अक्सर अपनी सार्वभौमिक साक्षरता का दावा करता है। "अगर पूरे केरल को शिक्षा तक समान पहुंच मिल रही थी, तो हमारे पास आदिवासी समुदायों में से कोई भी उच्च सरकारी पदों पर क्यों नहीं है?" उन्होंने कहा।

शोध बताते हैं कि स्कूलों के विलय से लड़कियों पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। 2017 के पेपर के शोधकर्ताओं ने पाया कि माता-पिता अपनी बेटियों को दूर के स्कूलों में भेजने में झिझकते थे और लड़कों की तुलना में लड़कियों के ड्रॉप आउट होने की संभावना अधिक थी।

कुछ स्कूलों में छात्रावास की सुविधा है, लेकिन कई माता-पिता छोटे बच्चों को अकेले रहने के लिए भेजने से कतराते हैं। सुरेंद्रन के पूर्व छात्र महेश, जिन्होंने कक्षा 5 में एक छात्रावास में दाखिला लिया, ने कहा कि वह अपने परिवार के छोटे बच्चों को उनके पास भेजने पर कभी विचार नहीं करेंगे। "मेरे पास बहुत मुश्किल समय था। सुविधाएं बहुत अच्छी नहीं थीं, ”उन्होंने कहा। "चूंकि मैं थोड़ा बड़ा था, मैंने इसके साथ अपनी तालमेल बना ली, लेकिन छोटे बच्चे इन बातों को कैसे समझ सकते हैं?" उसकी माँ ने कहा कि उसके चारों बच्चे अब बंद हो चुके मल्टीग्रेड स्कूल में पढ़ते थे और यह सुनकर कि उसे बंद किया जा रहा है, वह परेशान हो गई थी।

अट्टापडी के एक अन्य गांव के चार बच्चों की मां मुरुगाथा महेश ने कहा कि जहां अधिक विशेषाधिकार प्राप्त परिवारों के बच्चों को स्कूलों से दूरियां बढ़ने का डर नहीं है, वहीं गरीब परिवारों के बच्चों को समायोजन के लिए संघर्ष करना पड़ेगा। "कुछ बच्चों पर अतिरिक्त ध्यान देने की ज़रूरत है। कई लोग बच्चों को घर से दूर रखने से डरते हैं, ”उसने कहा। "चूंकि स्कूल पास में था, मैं अपने बच्चों के साथ स्कूल जाता था और कुछ देर उनके साथ बैठकर कक्षा में उनकी मदद करता था।" एक पड़ोसी गांव में, जहां विजया पढ़ाती थी, जीवा नेंजानी ने बताया कि उनके बेटे ने दो साल तक मल्टीग्रेड

स्कूल में पढ़ाई की थी और फिर उसे 20 किमी दूर स्कूल में भर्ती कराया गया था। “जब वह स्कूल में था तब वह गिर गया और उसका हाथ टूट गया। हमें इसके बारे में सूचित किए जाने से पहले कई घंटे बीत गए, ”उसने कहा। “क्योंकि इस क्षेत्र में, हमें मोबाइल नेटवर्क नहीं मिलता है। कोई भी हमसे संपर्क करने में सक्षम नहीं था। ”

इससे उसे परेशानी हुई कि वह इतने घंटों तक अपने बेटे की सहायता नहीं कर सकी।

"अगर वह मल्टीग्रेड स्कूल में पढ़ रहा होता और ऐसा होता, तो मुझे तुरंत पता चल जाता और मैं उसे खुद अस्पताल ले जाती," उसने कहा। इसलिए, कम से कम छोटे बच्चों के लिए, सरकार को गाँव के पास एक स्कूल प्रदान करना चाहिए।

बहुश्रेणी शिक्षा केंद्रों की गांवों से निकटता अक्सर शिक्षकों और स्थानीय समुदाय के बीच घनिष्ठ संबंधों को बढ़ावा देती है। अट्टापडी के उस गाँव के निवासी जहाँ विजयता पढ़ाती थी, उससे प्यार से बात करती थी। “सिर्फ स्कूल में ही नहीं, उसने पत्र या याचिकाएँ लिखने में मदद की थी। वह हमारे लिए अधिकारियों से फोन पर बात करती थीं, ”मुरुगन ने कहा। "हमें जो कुछ भी चाहिए था वह मदद मिली थी।" अब आशा कार्यकर्ता नेंजानी ने कहा कि विजयता ने ही उन्हें नौकरी के लिए आवेदन करने में मदद की थी।

अट्टापडी के एक अन्य गांव की 42 वर्षीय शिक्षिका मीनाम्मा के ने कहा, "ये स्कूल आदिवासी बस्तियों और सरकारी स्कूलों के बीच एक सेतु का काम करने में सक्षम थे।"

मीनाम्मा ने कहा कि जब उन्होंने अपने छात्रों को स्थानांतरण प्रमाण पत्र जारी किया तो उनकी आंखों में आंसू आ गए। "माता-पिता हमसे पूछ रहे हैं कि स्कूल क्यों बंद किए जा रहे हैं," उसने कहा। अपने बच्चों के लिए छात्रावास की मांग करने वाले कई लोगों ने उन्हें बताया कि उन्हें कोई नहीं मिला।

1 जून को पूरे केरल में स्कूल फिर से खुलने के कारण मल्टीग्रेड केंद्र बंद रहे। अट्टापडी से करीब 120 किलोमीटर दूर वायनाड जिले के एक गांव में सुरेंद्रन उठा, कपड़े पहने और अपनी स्कूटी निकाली। इसके बाद वे मल्टीग्रेड सेंटर के पास से गुजरे जहां उन्होंने 21 साल तक पढ़ाया था।

सुरेंद्रन कुछ किलोमीटर दूर सरकारी स्कूल में रुक गया। संगीतकार स्कूल के प्रवेश द्वार पर ढोल बजा रहे थे और दीवारों पर रंग-बिरंगी सजावट और स्वागत चिन्ह लगे हुए थे।

सुरेंद्रन इस स्कूल में कार्यरत नहीं थे। वे अभी भी विभिन्न नौकरियों के लिए आवेदन करने की प्रक्रिया में थे। फिर भी उन्होंने स्वागत समारोह में भाग लिया, छात्रों के बीच कुछ परिचित चेहरों की तलाश की और फिर अपने पुराने स्कूल में लौट आए, जो खाली पड़ा था। उनके पास अभी भी चाबियाँ थीं, लेकिन जल्द ही वे इन्हें पंचायत को वापस कर देंगे। दीवारों पर चमकीले चित्रों पर धूल की एक परत जम बन गई थी। "यह एक शिक्षक के रूप में मेरा बाईसवां वर्ष होता, इसलिए आज सुबह मैं उठने और अपने छात्रों को न देखने का विचार सहन नहीं कर सका," उन्होंने उदास मुस्कान के साथ कहा। उन्होने यह भी कहा कि वे गाड़ी से सरकारी स्कूल गये, ताकि वे 'पहले दिन' के अनुभव से चूक न जायेँ।

केरल से हजारों किलोमीटर दूर, छत्तीसगढ़ के बस्तर जिले में, पुजारी पारा की बस्ती इस क्षति का प्रमाण थी कि एकल-शिक्षक स्कूलों के बंद होने से दूरदराज के गांवों में बच्चों का भविष्य खराब हो सकता है।

सात साल पहले, 2015 में, पुजारी पारा के मिडिल स्कूल में नौ बच्चे कक्षा 7 में पढ़ रहे थे - एक और साल की शिक्षा के साथ वे कक्षा 8 और मिडिल स्कूल खत्म कर लेते, लेकिन दो किमी दूर अलनार गांव में स्कूल को मिडिल स्कूल के साथ मर्ज करने के निर्णय ने बच्चों के लिए कोई विकल्प नहीं छोड़े। मर्ज करने का वही पुराना तरीका कि पुजारी पारा स्कूल

में दस से कम बच्चे नामांकित थे। पुजारी पारा के स्कूल के नौ छात्रों में से सात लड़के थे। उनमें से चार, कुर्सो, गंभीर, शिवेन राम और सुखराम ने तुरंत स्कूल छोड़ दिया। भूपेन ने एक साल तक अलनार में पढ़ाई की, फिर अपने बड़े भाई के साथ कैटरिंग यूनिट में काम करने के लिए पढ़ाई छोड़ दी। फिर भी एक और लड़का, नरसिंह, अलनार में एक साल तक रहा, लेकिन बाद में बाहर हो गया। इसके तुरंत बाद, अन्य लोगों ने सुना कि नरसिंह ने अपने घर में एक विवाद के बाद आत्महत्या कर ली थी।

जब स्क्रॉल.इन ने सात साल पहले उनका साक्षात्कार लिया, तो उनमें से एक भुवनेश्वर बैसा ने अपनी शिक्षा जारी रखने के लिए दृढ़ संकल्प किया था। उन्होंने अलनार मिडिल स्कूल में कक्षा 8 में भाग लिया प्रत्येक दिन चार किमी पैदल चलकर।

दो हफ्ते पहले 22 वर्षीय मौसम की मार झेल रही बैसा ने बताया कि कैसे स्कूल की बंदी ने बच्चों की शिक्षा को प्रभावित किया था। "एक साथ आना-जाना था, दोस्ती थी, पर जब स्कूल बंद हुआ, सब बिखर गए,'' उन्होंने कहा।

बैसा ने अपनी आठवीं कक्षा अलनार स्कूल से पूरी की, फिर नौवीं कक्षा लखईबेड़ा में, जो एक और किलोमीटर दूर है। उसने कहा, "गर्मी की छुट्टी के दौरान मैं काम करने के लिए एक दुकानदार के साथ जुड़ गया। जब स्कूल फिर से खुला, तो ऊपर और नीचे चलने, संकरी धारा को पार करने का विचार हतोत्साहित करने वाला था और मैंने काम जारी रखने का फैसला किया।"

आज वह अजीबोगरीब कामों को अंजाम देता है। अक्सर अपने पिता के साथ शादियों में "मोर बाजा", एक स्थानीय ताल वाद्य बजाने के लिए, 200 रुपये से 300 रुपये प्रति दिन की कमाई करता है।

क्या बैसा ने स्कूली शिक्षा जारी रखी होगी यदि स्कूल को स्थानांतरित नहीं किया गया होता? "मुझे यकीन नहीं है," बैसा के पिता ने कहा। परिवार की तनावपूर्ण आर्थिक स्थिति का मतलब था कि उन्हें और उनके भाई दोनों को काम करना था, लेकिन दूर जाने वाले स्कूल ने छोड़ने का फैसला आसान कर दिया।

पुजारी पारा स्कूल की दो लड़कियां संगीता और कौशल्या 12वीं तक पहुंचने में सफल रहीं। संगीता ने बारहवीं की पढ़ाई की, जबकि कौशल्या नहीं कर सकीं। वह हर दिन आठ किलोमीटर पैदल चलकर लखईबेड़ा में अपनी दसवीं कक्षा पूरी करने में सफल रही। अपनी ग्यारहवीं और बारहवीं के लिए वह अपने घर से 35 किमी दूर बलेंगा गाँव में स्थानांतरित हो गई, क्योंकि उसे वहाँ अपनी दादी की देखभाल करनी थी। उसे पास के एक स्कूल में जाने की उम्मीद थी। हालाँकि, स्कूल उसकी दादी के घर से तीन किमी दूर था और नियमित उपस्थिति मुश्किल साबित हुई। उसने स्क्रॉल.इन को बताया कि 12वीं कक्षा के अंत में, उसने महसूस किया कि वह अपनी परीक्षा देने के लिए तैयार नहीं है और भारी मन से नौकरी छोड़ दी।

दक्षता में सुधार लाने के अपने सभी दावों के लिए स्कूल युक्तिकरण कार्यक्रम ने एक मुख्य मुद्दे को उजागर नहीं किया: शिक्षकों की कमी। उदाहरण के लिए, पुजारी पारा में प्राथमिक विद्यालय पिछले तीन वर्षों से बंद है, क्योंकि वहाँ कोई शिक्षक नहीं है। बैसा की 12 वर्षीय बहन काजल अपनी मां को घर के काम में मदद करने के बाद पढ़ने के लिए अलनार जाती है। काजल ने कहा, "यादव महोदया के निधन के बाद हमारे प्राथमिक विद्यालय में कोई शिक्षक नियुक्त नहीं किया गया था।" हालांकि, खंड शिक्षा अधिकारी चंद्रकांत यादव ने स्क्रॉल डॉट इन को बताया कि प्राथमिक विद्यालय में एक शिक्षक की नियुक्ति की गई है और यह इस शैक्षणिक वर्ष में काम करेगा।

पुजारी पारा से लगभग 90 कि॰मी॰ और निकटतम शहर जगदलपुर से 35 किमी दूर कांगेर घाटी राष्ट्रीय उद्यान के अंदर दरभा ब्लॉक के चंदामेटा गांव के बच्चों को और भी अधिक विकट चुनौती का सामना करना पड़ता है।

गांव तुलसी डोंगर की तलहटी में स्थित है, जो एक घने जंगलों वाली पहाड़ी है जिसे सशस्त्र विद्रोहियों के आधार के रूप में पहचाना गया है और माना जाता है कि ओडिशा और छत्तीसगढ़ के बीच उनके आंदोलन के लिए एक सुरक्षित गलियारा प्रदान करता है। इस प्रकार राष्ट्रीय उद्यान क्षेत्र के गाँव माओवादियों और सुरक्षा बलों दोनों की निगरानी में हैं। पुलिस और माओवादियों के बीच मुठभेड़, मौत, आत्मसमर्पण और गिरफ्तारी घाटी के चारों ओर नियमित समाचार बनते हैं। दरभा घाटी, जो 200 वर्ग किलोमीटर के राष्ट्रीय उद्यान का हिस्सा है, मई 2013 में एक चुनावी रैली के बाद लौट रहे कांग्रेस पार्टी के काफिले पर माओवादियों के हमले के लिए कुख्यात है, जिसमें वरिष्ठ राजनेताओं सहित 32 लोग मारे गए थे।

2015 में जब स्क्रॉल॰डॉट॰इन ने दौरा किया, तो दरभा ब्लॉक मुख्यालय से चंदामेता तक 33 किलोमीटर का रास्ता एक ऊबड़-खाबड़ जंगल का रास्ता था, जिस पर केवल दोपहिया वाहन ही चल सकते थे। आज 28 कि॰ मी॰ के खंड में पक्की सड़क है, जबकि जून के मध्य तक शेष पांच कि॰ मी॰ निर्माणाधीन थे। चंदामेटा में अब एक सुरक्षा शिविर भी है।

लेकिन स्थानीय लोग इसे सकारात्मक घटनाक्रम के रूप में नहीं देखते हैं: चंदामेटा में 160 में से 65 घर सुरक्षा कर्मियों और सशस्त्र माओवादियों के बीच तेज लड़ाई के डर से अपना घर छोड़कर भाग गए हैं।

यह पता लगाना कठिन था कि जिन परिवारों ने गाँव छोड़ दिया था, उनके बच्चे जहाँ कहीं भी बसे थे, वहाँ उन्होंने अपनी शिक्षा जारी रखी थी, क्योंकि अधिकांश बच्चे ब्लॉक के बाहर विभिन्न स्थानों पर बिखरे हुए थे। लेकिन राज्य के स्कूल विभाग द्वारा मई में किए गए एक सर्वेक्षण में चालीस बच्चों के नाम सूचीबद्ध किए गए थे, जो कोलेंग शिक्षा क्लस्टर के समन्वयक, मंगराराम नाग के अनुसार, प्राथमिक विद्यालय के लिए तैयार थे, जिसके तहत चंदामेता आती है।

दस साल पहले, चंदामेता का अपना प्राथमिक विद्यालय था। लेकिन यह बंद था, क्योंकि इसे सौंपा गया शिक्षक अनियमित था। बस्तर जिला कलेक्टर ने वादा किया था कि इस शैक्षणिक वर्ष की शुरुआत तक गांव में एक नया स्कूल होगा, लेकिन जून के अंत तक। हालांकि स्कूल फिर से खुल गए थे, निर्माण अधूरा था, इसलिए स्कूल बंद रहा।

2015 तक चंदमेटा के बच्चे, जिन्होंने प्राथमिक विद्यालय पूरा किया था, छिंदगुह में पांच किमी दूर स्थित एक माध्यमिक विद्यालय में जाते थे। उस वर्ष इस स्कूल को तीन किमी दूर कोलेंग गांव में एक अन्य स्कूल के साथ मिला दिया गया था।

कोलेंग के क्लस्टर समन्वयक नाग ने छिंदगढ़ मध्य विद्यालय के बंद होने पर शोक व्यक्त करते हुए स्क्रॉल डॉट इन को बताया कि हर साल मुंडागढ़, साल्फीपदार, चंदामेटा और कछीरस के आसपास के गांवों से लगभग 30 बच्चे माध्यमिक विद्यालय के लिए तैयार होते हैं। उन्होंने बताया कि छिंदगढ़ इन बच्चों के केंद्र में स्थित है। मिडिल स्कूल बंद होने के बाद, जो बच्चे पढ़ने के इच्छुक थे, उन्हें 25 किमी दूर दरभा के एक आवासीय स्कूल में दाखिला लेना पड़ा, क्योंकि कोलेंग स्कूल भी उनके लिए रोजाना आने-जाने के लिए बहुत दूर है। सरपंच बुद्राराम नाग ने कहा कि छिंदगढ़ के दस गैर-आदिवासी परिवारों के बच्चों को स्कूल बंद होने से भी बड़ा झटका लगा। माओवादियों ने उनके परिवारों को गांव छोड़ने के लिए मजबूर किया, क्योंकि उन्हें परिवारों के पुलिस के साथ गठबंधन होने का संदेह था। सरपंच इस बात की पुष्टि करने में असमर्थ था कि क्या ये बच्चे उन जगहों के स्कूलों में जा रहे थे जहां वे स्थानांतरित हुए थे।

रहने वाले गैर-आदिवासी परिवारों में राजमन सेठिया का परिवार था। 2015 में जब स्क्रॉल.इन सेठिया से मिला, तो वह 13 साल का था, जिसने कक्षा 5 की पढ़ाई पूरी कर ली थी और कक्षा 6 में आगे बढ़ने की उम्मीद कर रहा था, लेकिन सेठिया को भी इस विचार को छोड़ना पड़ा, क्योंकि इसका मतलब छह किमी चलना होगा कोलेंग से हर दिन एक जंगल के रास्ते से।

20 साल के सेठिया ने कहा, "एक वयस्क के लिए हर दिन जंगल के रास्ते से ऊपर और नीचे चलना असंभव था ।" सेठिया ने स्कूल छोड़ दिया और दिहाड़ी मजदूर के रूप में काम करना शुरू कर दिया। सड़क निर्माण का काम किया और 250 रुपये कमाए एक दिन में। उसने संजीदगी से कहा कि अगर कोई स्कूल होता तो वह जरूर पढ़ता। अब वह शादीशुदा है। अपनी पत्नी के साथ रहने के लिए उसने काम से छुट्टी ले ली है। "वह किसी भी दिन एक बच्चे की उम्मीद कर रही है," उसने मुस्कुराते हुए कहा।

(सौजन्य: स्क्रॉल॰डॉट॰इन.)

******

भाषाई साम्राज्यवाद: हिंदी के प्रति आक्रोश को बढ़ावा देने हेतु भाजपा की घोषणा

- टी. के. राजलक्ष्मी

7 अप्रैल को संसदीय राजभाषा समिति की 37वीं बैठक की अध्यक्षता करते हुए इसकी की रिपोर्ट के ग्यारहवें खंड की पुष्टि के बाद गृह मंत्री अमित शाह ने तीन व्यापक बिन्दुओं पर चर्चा की। पहला बिन्दु हानिकारक नहीं था और यह कमिटी की सिफ़ारिशों के कार्यान्वयन से संबन्धित था। दूसरा बिन्दु कक्षा 9 तक के विद्यार्थियों के लिए हिन्दी को एक भाषा के रूप में स्थापित करने और हिन्दी शिक्षण परीक्षाओं पर विशेष ध्यान देने से संबन्धित था। तीसरा और सबसे महत्वपूर्ण बिंदु प्रधान मंत्री नरेंद्र मोदी का एक संदेश था, जिसमें उन्होंने कहा था कि सरकार चलाने में हिंदी का उपयोग करने की आवश्यकता थी, क्योंकि इससे भाषा का महत्व बढ़ाने की बात थी। अमित शाह ने कहा कि आधिकारिक भाषा को देश की एकता का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बनाने का समय आ गया है। उन्होंने कहा, "जब राज्यों के नागरिक अन्य भाषाएं बोलते हैं, एक दूसरे के साथ संवाद करते हैं, तो यह भारत की भाषा में होना चाहिए"। इस दृष्टिकोण में एकमात्र अड़चन यह है कि हिंदी न तो भारत की एकमात्र आधिकारिक या बोली जाने वाली भाषा है और न ही यह पूरे देश की भाषा है। ये मुद्दे चर्चा के लिए समिति के एजेंडे में शामिल नहीं थे। स्पष्ट रूप से, भारतीय जनता पार्टी के नेतृत्व वाली (भाजपा) सरकार का प्राथमिक उद्देश्य हिंदी पट्टी में अपने निर्वाचन क्षेत्र को खुश करना है, जो कि इसके राजनीतिक भाग्य का अभिन्न अंग है। गृह मंत्री ने आगे कहा कि हिन्दी को अंग्रेजी के विकल्प के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए न कि स्थानीय भाषाओं के लिए। उन्होंने कहा कि जब तक अन्य स्थानीय भाषाओं के शब्दों को स्वीकार कर हिंदी को लचीला नहीं बनाया जाएगा, तब तक इसका प्रचार-प्रसार नहीं किया सकता। यह स्पष्ट था कि वह अंग्रेजी को एक विदेशी भाषा के रूप में कोटिवद्ध करने और हिंदी को बढ़ावा देने का प्रयास कर रहे थे, जो कि भाजपा की नजर में उपमहाद्वीप की सभी भाषाओं में सबसे अधिक मूल भाषा है। अपने तर्क को मजबूत करने के लिए शाह ने कहा कि कैबिनेट के एजेंडे का 70 प्रतिशत अब हिंदी में तैयार किया जा रहा है और आठ पूर्वोत्तर राज्यों में 22,000 हिंदी शिक्षकों की भर्ती की गई है। उन्होंने कहा कि उत्तर-पूर्वी क्षेत्र में नौ आदिवासी समुदायों ने देवनागरी को अपनी बोलियों के लिए

लिपि के रूप में अपनाया था और सभी आठ राज्यों ने दसवीं कक्षा तक के स्कूलों में हिंदी को अनिवार्य बनाने के लिए प्रतिबद्धता जाहीर की थी ।

• उत्तर-पूर्वी प्रतिक्रिया

विडंबना यह है कि उत्तर-पूर्वी राज्यों के संगठनों ने शाह के बयानों का उत्साहपूर्वक जवाब नहीं दिया। यह व्यापक रूप से माना जाता था कि 1980 के दशक में "विदेशियों" के खिलाफ असम में छह साल के लंबे आंदोलन की पृष्ठभूमि और इसके खूनी परिणाम को देखते हुए सरकार को अधिक संवेदनशील होना चाहिए था, जिसकी परिणति असम समझौते में हुई। मीडिया रिपोर्टों के अनुसार, असम में असम साहित्य सभा और मणिपुर में मेइतेई एरोल आईक लोइनशिल्लों अपुनबा लुप (एमईईएलएएल) ने केंद्र से दसवीं कक्षा तक हिंदी को अनिवार्य बनाने के अपने फैसले पर पुनर्विचार करने का आग्रह किया। मीलाल के पदाधिकारियों को यह कहते हुए उद्धृत किया गया कि भाजपा की 'एक राष्ट्र, एक भाषा, एक धर्म' की विचारधारा पूरे देश में लागू नहीं की जा सकती, खासकर मणिपुर में। असम साहित्य सभा ने स्पष्ट रूप से कहा कि केंद्र के इस कदम से असमिया और अन्य स्वदेशी भाषाओं के लिए "अस्पष्ट भविष्य" है और सरकार से इसके बजाय असमिया और अन्य स्वदेशी भाषाओं को विकसित करने का आग्रह किया। पूर्वोत्तर छात्र संगठन और असम जातीय परिषद और रायजर दल जैसे दलों ने भी इसी तरह की आपत्तियां व्यक्त कीं। त्रिपुरा में, मीडिया रिपोर्टों ने 56 आदिवासी संगठनों के विरोध का हवाला दिया, जिन्हें डर था कि उनकी लिपि को देवनागरी से बदल दिया जाएगा। मिजोरम और मेघालय के संगठनों ने भी इसी तरह की आशंका व्यक्त की। लेकिन केवल उत्तर-पूर्वी संगठनों ने ही गृह मंत्री के प्रस्ताव पर कड़ी प्रतिक्रिया नहीं दी। दक्षिणी राज्यों और पश्चिम बंगाल से भी जोरदार गूंज सुनाई दी।

• दक्षिणी प्रतिक्रिया

तमिलनाडु के मुख्यमंत्री एम.के. स्टालिन ने ट्विटर पर कहा कि सरकार "फिर वही गलती कर रही है" और यह सफल नहीं होगा। उन्होंने कहा: “क्या अमित शाह सोचते हैं कि हिंदी राज्य पर्याप्त है और अन्य भारतीय राज्यों की आवश्यकता नहीं है? एक भाषा से एकता में मदद नहीं मिलेगी। यह देश की अखंडता को खत्म कर देगा। भाजपा के शीर्ष नेता भारत के बहुलवाद को नुकसान पहुंचाने की दिशा में लगातार काम कर रहे हैं। तमिलनाडु में द्रविड़ कड़गम के नेतृत्व वाले के. वीरमणि ने मंत्री के बयान के खिलाफ विरोध प्रदर्शन किया। पांडिचेरी में उस समय हंगामा मच गया जब JIPMER [जवाहरलाल इंस्टीट्यूट ऑफ पोस्टग्रेजुएट मेडिकल एजुकेशन एंड रिसर्च] प्रशासन ने एक सर्कुलर जारी किया कि सभी आधिकारिक संचार और रिकॉर्ड अब हिंदी में होंगे। तमिलनाडु में सत्ताधारी दल द्रविड़ मुनेत्र कड़गम (डीएमके) द्वारा कड़ा विरोध दर्ज करने के बाद राज्यपाल ने आश्वासन दिया कि हिंदी थोपना नहीं होगा और तमिल को प्राथमिकता दी जाएगी। कर्नाटक में पूर्व मुख्यमंत्री सिद्धारमैया ने अपनी 'कन्नडिगा' पहचान का दावा करते हुए गुस्से में ट्वीट किया। उन्होंने कहा: “हिंदी हमारी राष्ट्रीय भाषा नहीं है और हम इसे कभी नहीं होने देंगे। हिन्दी को थोपना जबरदस्ती तंग करने की निशानी है । उनकी टिप्पणियों के तुरंत बाद तमिलनाडु में विरोध प्रदर्शन शुरू हो गए। 2017 में हिंदी से संबंधित एक और विवाद तब शुरू हुआ जब दक्षिण में राष्ट्रीय राजमार्गों और मेट्रो स्टेशनों पर साइनबोर्ड और मील के पत्थर पर अंग्रेजी की जगह हिंदी ने ले ली। तमिलनाडु और कर्नाटक दोनों ने केंद्र सरकार के साथ कड़ा विरोध दर्ज कराया। उसी वर्ष उप राष्ट्रपति एम. वेंकैया नायडू ने अहमदाबाद में एक बैठक में हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में संदर्भित किया, जिस पर कड़ी प्रतिक्रिया हुई। 27 मई 2014 को गृह मंत्रालय ने एक सर्कुलर जारी कर सभी मंत्रालयों, विभागों, सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों और बैंकों को आधिकारिक सोशल मीडिया अकाउंट्स में हिंदी को प्रमुखता देने के लिए कहा था। तमिलनाडु के पूर्व मुख्यमंत्री एम. करुणानिधि ने इस कदम की कड़ी आलोचना करते हुए कहा था: "हिंदी को प्राथमिकता देना गैर-हिंदी भाषी लोगों के बीच मतभेद पैदा करना उन्हें दूसरे दर्जे का नागरिक बनाने के प्रयास की दिशा में पहला कदम माना

जाएगा।" रिपोर्टों के अनुसार, जब किरेन रिजिजू, जो उस समय गृह राज्य मंत्री थे, ने इस आधार पर सभी आधिकारिक संचारों में हिंदी को बढ़ावा देने पर जोर दिया कि यह एक आधिकारिक भाषा है। गृह मंत्री राजनाथ सिंह ने शांत चित्त से कहा कि उनके मंत्रालय में सभी भाषाएं महत्वपूर्ण हैं। उत्तर-पूर्वी क्षेत्र-जैसे स्थानों में भी हिंदी को बढ़ावा देने का जुनून चौंकाने वाला है। जातीय लिपियों, बोलियों और स्थानीय भाषाओं को बनाए रखने और बढ़ावा देने के बजाय, लिपियों को देवनागरी में परिवर्तित करना इन आदिवासी समुदायों की सांस्कृतिक और भाषाई विविधता को कम करने के अलावा इन स्वदेशी भाषाओं के अस्तित्व को खत्म करने का एक प्रयास प्रतीत होता है। कई पर्यवेक्षकों को संदेह है कि इस भाषाई आदेश के पीछे का मकसद बोलचाल की हिंदी और निश्चित रूप से अन्य भाषाओं की कीमत पर हिंदी के संस्कृत संस्करण को आगे बढ़ाना हो सकता है। जबकि वैचारिक अभियान स्पष्ट हो सकता है, यह आश्चर्य की बात है कि एक पार्टी जिसने 2022 में पांच में से चार राज्यों में चुनावी सफलता का स्वाद चखा है, इस तरह के एजेंडे को आगे क्यों बढ़ा रही है। खासकर हिन्दी हृदयभूमि उत्तर प्रदेश में भी जीत हुई है।

• भाषाई चेतना

तमिलनाडू या पश्चिम बंगाल जैसे भाषायी रूप से संगठित राज्यों के विपरीत, हिंदी पट्टी में भाषाई चेतना पैदा करने की कथित आवश्यकता ही एकमात्र तर्क हो सकता है, जहां कोई भी मौजूद नहीं है और इसका उपयोग इसके पक्ष में एक राजनीतिक चेतना पैदा करने के लिए किया जा सकता है। बोलियों की बहुलता के कारण और इस तथ्य के बावजूद कि विभिन्न भाषाओं को गलत तरीके से हिंदी में समाहित कर दिया गया है, एक भाषाई-राष्ट्रवादी पहचान हृदयभूमि में आकार लेने में सक्षम नहीं है। 1973 में लिखी गई अपनी पुस्तक में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) के पूर्व महासचिव प्रकाश करात ने उल्लेख किया था कि 19वीं शताब्दी में भाषाई पुनर्गठन या एक विशिष्ट राष्ट्रीयता की प्रक्रिया के लिए उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान, मध्य प्रदेश और हरियाणा के पांच हिंदी भाषी राज्यों में कोई आंदोलन नहीं हुआ। उस समय हिंदी के एक मानकीकृत संस्करण को इसके भौगोलिक प्रसार, जाति समूहों के अतिव्यापी होने, भाषा की सीमाओं की कमी और क्षेत्र में बोलियों और भाषाओं की बहुलता को देखते हुए लागू करना असंभव था। यह बहुत संभव है कि भाजपा वर्तमान संदर्भ में सोशल इंजीनियरिंग के साथ अपने प्रयोगों में उचित सफलता हासिल करते हुए इसके चारों ओर एक राजनीतिक चेतना और निर्वाचन क्षेत्र बनाने की कोशिश कर रही है। जबकि संविधान सभा में ही आधिकारिक भाषाओं बनाम राष्ट्रीय भाषाओं पर बहस की एक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि है, राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (एनडीए) के दूसरे कार्यकाल में शपथ लेने के बाद से हिंदी को एक राष्ट्रीय भाषा के रूप में माने जाने पर जोर दिया गया है। 2014 के बाद से भाजपा नेता चुनिंदा रूप से "एक राष्ट्र, एक भाषा, एक धर्म" के अपने दोषपूर्ण ढांचे में हिंदी को बढ़ावा देने की आवश्यकता पर जोर दे रहे हैं। 'हिंदी राष्ट्रवाद' के लेखक और प्रेमचंद के पोते, आलोक राय, जो हिंदी साहित्य की सबसे ऊंची शख्सियतों में से एक हैं, ने कहा: "एक राष्ट्र-एक भाषा' के एक प्रकार के यूरोपीय राष्ट्रवाद की लालच भारतीय स्वतंत्रता के पूर्व और उसके बाद भी मुखर रही है। संविधान सभा की बहसों में भी यह स्पष्ट नहीं था कि राष्ट्रभाषा क्या होनी चाहिए। इसे देखने का यह विरोधाभासी तरीका है जिसमें 'एक राष्ट्र-एक भाषा' का विचार लगातार, अलग-अलग तरीकों से, देश की एकता के लिए प्राथमिक खतरा या प्रमुख खतरों में से एक रहा है।" राय ने बताया कि "भाषा के आधार पर राष्ट्र को एकजुट करने" की लालसा कुछ ऐसी थी जिसने वास्तव में राष्ट्र को खंडित करने के सबसे करीब ला दिया था। "संविधान सभा हिंदी के कारण लगभग भंग हो गई। इसके बाद इस मुद्दे को 15 साल के लिए टाल दिया गया। 14वें वर्ष में हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में पेश करने वालों ने कहा, "हमारा समय आ गया है"। लेकिन आंध्र प्रदेश और तमिलनाडु में हिंसक विरोध प्रदर्शन हुए। इन अभिव्यक्तियों में से प्रत्येक के लिए एक प्रकार की सतही निरंतरता है, लेकिन एक अंतर्निहित विशिष्टता है - चाहे वह संविधान सभा की बहस हो, जहां संविधान सभा के टूटने को रोकने के लिए डॉ राजेंद्र प्रसाद द्वारा भाषा के प्रश्न को बार-बार टालना पड़ा हो या हिंदी थोपने के कथित खतरे की प्रतिक्रिया के

रूप में तमिल राष्ट्रवाद का उदय। ” इस सवाल पर कि भाजपा इस मुद्दे को बार-बार क्यों उठाती है, उन्होंने कहा कि भले ही पार्टी के पास इससे दूर होने का कोई मौका नहीं था, यह देश का ध्रुवीकरण करने और उत्तर-दक्षिण विभाजन पैदा करने का एक तरीका था। "हिंदी तब राष्ट्रवाद के लिए एक खतरे का वाहन बन जाती है, भले ही इसे उस राष्ट्रीय एकता के एक महान प्रवर्तक के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। भाजपा खुद को ऐसे पेश करती है जैसे कि यह देश के लिए अच्छा हो। लेकिन जो स्पष्ट है वह यह है कि वह जानती है कि उसे हिंदी पट्टी में खुद को मजबूत करने की जरूरत है। राष्ट्रभाषा [देश की भाषा] के रूप में हिंदी का विचार उसे यहाँ बहुत अच्छा लगता है। कोई उन्हें अंतिम रूप से याद दिला सकता है कि 15 'राष्ट्रभाषायें' हैं। आठवीं अनुसूची में सभी राष्ट्रभाषायें ही शामिल हैं ।" उन्होंने बताया कि हिंदी की आंतरिक राजनीति हिंदी के एक संस्करण संस्कृतकृत ब्राह्मणवादी हिंदी को ब्रज, मैथिली और भोजपुरी- जैसी न्य भाषाओं पर हावी करने के बारे में है, जिनकी अपनी समृद्ध सांस्कृतिक परंपराएं हैं। उन्होंने कहा, 'हिंदी का इस्तेमाल हमेशा राजनीतिक एजेंडे को आगे बढ़ाने के लिए किया जाता रहा है। यह ध्यान देने योग्य है कि भाषा, लेखकों या कवियों में किसी भी योग्य व्यक्ति ने इस आधिकारिक ब्राह्मणवादी हिंदी का समर्थन नहीं किया है। ”

• संविधान सभा की बहसें

रमा कांत अग्निहोत्री, पूर्व में दिल्ली विश्वविद्यालय में भाषाविज्ञान विभाग के साथ और वर्तमान में उदयपुर में विद्या भवन सोसाइटी में प्रोफेसर एमेरिटस, भी बताते हैं कि राष्ट्र भाषा के रूप में हिंदी का मुद्दा यदि बहुत पहले नहीं तो कम से कम संविधान सभा की बहसों में तो आया ही था। “तेलुगु बोलने वालों ने कहा कि उनकी भाषा सबसे पुरानी भाषाओं में से एक है और दूसरों की तुलना में अधिक वैज्ञानिक भी है और इसलिए इसे राष्ट्रीय भाषा के लिए उपयुक्त दावेदारी के रूप में माना जाना चाहिए। संस्कृत, बांग्ला, तमिल और अंग्रेजी के समर्थकों ने भी यही दावा किया। हिंदी के समर्थक, जैसे पुरुषोत्तम दास टंडन [संविधान सभा में हिंदी के एक प्रमुख चैंपियन], घर-घर जाकर कह रहे थे कि देश के लिए इतना तो करो (कम से कम राष्ट्र के लिए यह करो)। एक बड़ी बहस के बाद यह निर्णय लिया गया कि हिंदी एक आधिकारिक भाषा होगी, लेकिन भारतीय संघ की राष्ट्रभाषा नहीं होगी।"

अग्निहोत्री ने बताया कि फिल्मों, नौकरियों, यात्रा आदि के माध्यम से हिंदी ने पहले ही काफी प्रगति कर ली थी। इसे राष्ट्रभाषा के रूप में आगे बढ़ाने की कोई आवश्यकता नहीं थी। “हिंदी उत्तर-पूर्व और तमिलनाडु तक भी पहुंच गई है, लेकिन इसलिए नहीं कि आरएसएस का इससे कोई लेना-देना था। लेकिन अगर इसे अन्य क्षेत्रीय भाषाओं पर थोपने की कोशिश की जाती है, तो कोई कारण नहीं है कि वे इस अधिरोपण को स्वीकार करें। यह विडंबना ही है कि इस उद्देश्य के प्रति अपनी सभी प्रतिबद्धताओं के बावजूद, पूरी प्रणाली यह सुनिश्चित करने में सक्षम नहीं है कि बारहवीं कक्षा का बच्चा समझ सके, उदाहरण के लिए, एक हिंदी अखबार का संपादकीय।”अग्निहोत्री ने जोर देकर कहा कि यह विचार कि एक राष्ट्र- एक ध्वज- एक जाति- एक भाषा या एक धर्म होना चाहिए, स्वस्थ नहीं है।

• भाषा परिवार

अग्निहोत्री बताते हैं कि पांच प्रमुख भाषा परिवार हैं और सरकार ने स्वयं 1,652 भाषाओं की पहचान की है। "ये भाषाएं अक्सर एक-दूसरे में प्रवाहित होती हैं। जैसा कि प्रसिद्ध भाषाविद् प्रो. पी.बी. पंडित कहते थे, “भाषाई व्यवहार में परिवर्तनशीलता संचार को बाधित करने के बजाय सुगम बनाती है। दिल्ली से कन्याकुमारी के लिए ट्रेन में बैठे दो लोग अब भी बिना किसी हिचकिचाहट के संवाद करने में सक्षम हैं।” दूसरा दिलचस्प पहलू यह देखना है कि कितनी भाषाओं को हिंदी में समाहित कर लिया गया है। अवधी, मगही, भोजपुरी और मैथिली तो हैं ही। अग्निहोत्री के अनुसार, 2011 की जनगणना के अनुसार, कम से कम 57 भाषाओं को हिंदी के अंतर्गत शामिल किया गया है। “1961 में जब 1,652 भाषाओं

की पहचान की गई थी, राजनेता हिंदी भाषी क्षेत्र के बारे में चिंतित थे। उन्होंने पूछा कि हिंदी हृदयभूमि कहां है। 1971 में 1,652 भाषाओं की उस विस्तृत सूची को घटाकर 108 कर दिया गया था और तब से कई भाषाओं को हिंदी या किसी अन्य श्रेणी में समाहित कर दिया गया है।

तो सवाल यह है कि किस तरह के मानकवाले और विद्वतापूर्ण हिंदी को बढ़ावा दिया जा रहा है? “इलाहाबाद या मेरठ की कुछ सड़कों को छोड़कर, लोग कहीं भी यह हिंदी नहीं बोलते हैं। यह अभिजात वर्ग की भाषा है। हिन्दी बहुसंख्यकों की भाषा नहीं है। यह सत्ता की भाषा है। यह महात्मा गांधी की हिंदुस्तानी भाषा नहीं है। एक शुद्ध और मानक भाषा की पूरी अवधारणा ही त्रुटिपूर्ण है। कोई हिंदी में एक भी वाक्य नहीं बोल सकता और दावा कर सकता है कि यह शुद्ध हिंदी है। उदाहरण के लिए, "मैं रोज़ सुबह स्नान कर स्कूल जाता हूँ" जैसे वाक्य में, सुबह और रोज़ उर्दू (मूल रूप से फ़ारसी-अरबी) शब्द हैं और 'स्कूल' अंग्रेजी है। किसी भी मामले में, हिंदी और उर्दू के बीच संरचनात्मक अंतर क्या है? कोई भी नहीं।" भाषा थोपने के विवाद पर लिखने वाले वरिष्ठ पत्रकार, कवि और लेखक कुलदीप कुमार ने मौलाना अबुल कलाम आजाद ने पुरुषोत्तम दास टंडन को लिखे पत्र में जो कहा था, उसे याद किया। उन्होंने लिखा: “उत्तर और दक्षिण का मिलन अंग्रेजी के माध्यम से संभव हुआ है। अगर आज हम अंग्रेजी को छोड़ दें तो यह भाषाई रिश्ता खत्म हो जाएगा।“

• विशिष्ट दावे

यह स्पष्ट है कि हिंदी का कोई मानकीकृत रूप मौजूद नहीं है। इस बात पर जोर देना कि ऐसा मौजूद है और इसे पूरे देश पर थोपकर यह दावा करना कि वह एकता बनाएगा, खयाली पुलाव पकाना है। पहचान के मुद्दों को गर्म रखना, चाहे वह धार्मिक हो या भाषाई, लोगों को वास्तविक मुद्दों से विचलित करता है। इस मायने में, यह उन सभी के लिए उपयुक्त है, जो भाजपा के भाषाई नुस्खों पर प्रतिक्रिया दे रहे हैं। भारत जैसे बहु-सांस्कृतिक, बहु-धार्मिक, बहु-भाषाई, बहु-साहित्यिक और विविध खानपान वाले देश में, जहां बहुभाषावाद तेजी से आदर्श बनता जा रहा है, अन्य सभी को छोड़कर एक भाषा की कल्पना करना असंभव है। भले ही सरकार अंग्रेजी को स्थानीय भाषाओं और हिंदी से बदलना चाहती हो, लेकिन यह एक सच्चाई है कि अंग्रेजी बहुसंख्यकों की भाषा नहीं है। भारतीय संचार में बहू-भाषी हैं।

स्वर्गीय कुमार सुरेश सिंह द्वारा संपादित मौलिक 'भारत के लोग' परियोजना में, 'भाषाएं और लिपियों' पर खंडों के दिलचस्प अवलोकन से ज्ञात होता है कि 1961, 1971 और 1981 की तीन जनगणनाओं में द्विभाषावाद में वृद्धि देखी गई थी। यह मानने का कोई कारण नहीं है कि इस प्रवृत्ति में वृद्धि जारी नहीं रही है।

भाजपा की "राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी" लाइन हिमाचल प्रदेश और गुजरात जैसे राज्यों में मतदाताओं के बीच तालमेल बिठा सकती है, जहां इस साल चुनाव होने हैं। 2023 में तीन हिंदी भाषी राज्यों में विधानसभा चुनाव होने हैं: मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ और राजस्थान और पूर्वोत्तर राज्य मेघालय, त्रिपुरा, नागालैंड और मिजोरम में। अगर इन हिंदी भाषी राज्यों में हिंदी की वजह से काफी अच्छी प्रतिक्रिया मिलती है, तो पार्टी एजेंडा को आगे बढ़ा सकती है और 2024 में आम चुनाव तक इसे बनाए रख सकती है। यह ध्यान देने योग्य है कि 'भाषा और लिपियों' के परिचय में कहा गया है कि विशाल सामाजिक और भाषाई विविधता सामाजिक और भाषाई विकास के लिए कभी भी बाधा नहीं रही है। वास्तव में, इसने एक साझा सांस्कृतिक विरासत के एकीकृत, अंतर्निहित भाषाई आधार के विकास में मदद की है। भाजपा और उसके नेतृत्व को इस पर ध्यान देने की जरूरत है।

(टी.के. राजलक्ष्मी फ्रंटलाइन की वरिष्ठ उप संपादक हैं; साभार 'जनता वीकली', 12 जून, 2022)

*****

भारत में उच्च शिक्षा में आने वाला व्यवधान

- रोहन डिसूज़ा

नई शिक्षा नीति 2020 (एनईपी) भारत में शिक्षा में पूरी तरह बदलाव के लिए ख़्वाहिशमंद है। इस पर अभी संसद में बहस होनी बाकी है। नतीजा इसके लागू किए जाने के मुत्तलिक है।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा जारी नए नियमों और निर्देशों की बौछार ने उच्च शिक्षा का रास्ता साफ कर दिया है। मौजूदा सीखने-सिखाने की प्रक्रिया में तर्कसंगत गहन सोच और बेहतर नागरिकता की समझ के ठीक उलट निर्देश मोड को लागू करने का मज़बूत इरादा नई शिक्षा नीति का है। निर्देश मोड में सूचना, परीक्षा, व्यावसायिक प्रशिक्षण और कौशल, आदि शामिल हैं।

निर्देश मोड को विश्वविद्यालय कक्षा की अवधारणा को समाप्त करने या इसे अधिक सटीक रूप से खंडित करने के लिए लागू करना है। इसमें ब्लैकबोर्ड के सामने सभी छात्र एक साथ कक्षा की अंतःक्रिया में भाग नहीं ले पायेंगे। इसकी जगह ऑनलाइन कक्षा में छात्र व्यक्तिगत रूप से भाग लेंगे। ऑनलाइन मॉड्यूल पर नई शिक्षा नीति का ज़ोर अंततः मौजूदा कक्षा की व्यवस्था को खत्म करना है।

प्रोफेसर की अहमियत को कम करना

मार्च में यूजीसी के अध्यक्ष ने घोषणा की कि विश्वविद्यालयों और कॉलेजों में 'प्रोफेसर-ऑफ-प्रैक्टिस' की 'लेटरल एंट्री' की अनुमति देने की योजना पर काम चल रहा है। अभ्यास के इन प्रोफेसरों के लिए न तो पीएचडी की आवश्यकता होगी और न ही राष्ट्रीय पात्रता परीक्षा (नेट) उत्तीर्ण करने की। इस प्रकार उनका डोमेन अनुभव अपने आप में पर्याप्त माना जाएगा है। पूर्व से निर्धारित शैक्षणिक योग्यतायेँ उनके लिए आवश्यक नहीं होंगी। भारत में डॉक्टरेट की डिग्री के बिना प्रोफेसरशिप प्रदान करने की स्थिति दुर्लभ, अपवाद और विशेष परिस्थिति में रही है।

लैटरल इंट्री से प्रोफेसर बनाने की नई शिक्षा नीति का प्रयोग दो अहम विखंडन का आगाज़ करती है। सबसे पहले, अकादमिक प्रक्रिया से प्रोफेसरशिप की अवधारणा को अलग करने का एक स्पष्ट इरादा है। उल्लेखनीय तथ्य यह है कि अभ्यास- के- प्रोफेसर को सभी शैक्षणिक संस्थागत प्रदर्शन के विंदुओं को पूरी तरह से नज़रंदाज़ करना है।

ये विंदु बौद्धिक श्रम, जैसे- अनुसंधान, शिक्षण, सहकर्मी-समीक्षित प्रकाशनों और सबसे महत्वपूर्ण रूप से अनुशासनात्मक क्षेत्र को आगे बढ़ाकर अर्जित अकादमिक स्थिति को संदर्भित करते हैं। आदर्श शब्दों में, अकादमिक प्रोफेसर से केवल औपचारिक रूप से संस्था या विश्वविद्यालय के प्रति उत्तरदायी होने की अपेक्षा की जाती है। प्रोफेसरशिप की अधिक सार्थक जवाबदेही, वास्तव में, विद्वानों के वैश्विक समुदाय के प्रति है और अनुशासन के भीतर साथियों द्वारा लगातार संपर्क जारी रहता है (हैमन 2019, 919-941)।

दूसरी ओर, अभ्यास -के- प्रोफेसर, जैसा कि वर्तमान में यूजीसी द्वारा कल्पना की गई है, अधिक-से-अधिक एक सूचना सेवा प्रदाता हैं। ये एक विषय विशेषज्ञ हैं जो अकादमिक प्रक्रिया से हास्यपूर्ण तरीके से बाहर हैं ।

एडटेक की धूम

लैटरल इंट्री दूसरे विखंडन की घोषणा करती है। पीछे के दरवाजे से एडटेक जैसी शैक्षिक प्रवैधिकी कंपनी आएगी और उसके कर्मी विश्वविद्यालय के विभागों और केन्द्रों पर पदस्थापित होंगे। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अध्यक्ष ने

फरवरी, 2022 को इंडियन एक्सप्रेस के साथ साक्षात्कार में बेहिचक पुष्टि की कि कोर्स के विषय-वस्तु एवं वित्तीय नियमों के निर्माण के लिए विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों के साथ एडटेक की सहभागिता सुनिश्चित की जाएगी।

भारत ने 2020 में लगभग 1.4 बिलियन डॉलर के निवेश को आकर्षित करके एक 'कोविड -19 एडटेक बोनान्ज़ा' देखा है। कई उद्योग खोजी अगले पांच वर्षों के भीतर लगभग तीन गुना होने की उम्मीद करते हैं। भारत में एडटेक का 2.8 बिलियन डॉलर (2020) से 10.4 बिलियन डॉलर (2025) तक व्यापार बढ़ने की उम्मीद है। एक रिपोर्ट के अनुसार, जनवरी 2020 से 2021 के बमुश्किल मध्य तक तीन भारतीय एडटेक स्टार्टअप - अनएकेडमी, एरुडिटस और अपग्रेड यूनिकॉर्न(1 बिलियन डॉलर से अधिक पूँजीवाले स्टार्ट-अप) बन गए, जिसमें बायजू ने एक निर्णायक स्थिति हासिल की।

इन भारतीय एडटेक कंपनियों (नई शिक्षा नीति में प्रौद्योगिकी सेवा प्रदाताओं के रूप में जाना जाता है) की शैक्षिक क्षमता को देखते हुए यहां थोड़ा विषयांतर होते हुये चैतन्य रवि और जूही सिद्धार्थ के हाल के एक लेख को रेखांकित किया जा सकता है जो कॉर्पोरेट नियंत्रण के बारे में कई उभरती चिंताओं पर सूक्ष्मता से चर्चा करता है। पाठ्यक्रम सामग्री और इन 'प्रौद्योगिकी सेवा प्रदाताओं' के लाभ के उद्देश्य के लिए विश्वविद्यालय अपनी भूमिका निभाने की क्षमता विकसित करेगा। यह भी चिंताजनक है कि एडटेक कंपनियां ज्यादातर उद्यमी पूंजीपतियों की एक श्रृंखला से अपना निवेश आकर्षित करती हैं, जो वास्तव में सुपर मुनाफा कमाने की कोशिश कर रहे हैं।

परेशान करने वाले संदेह मेटा-डेटा के स्वामित्व के बारे में भी बने रहते हैं जो ऑनलाइन पाठ्यक्रमों के माध्यम से डिजिटल इंटरैक्शन की भरमार से उत्पन्न होंगे। क्या छात्र-उपयोगकर्ताओं को अपने डेटा निकास का स्वामित्व और नियंत्रण मिल जाएगा, या यह शैक्षिक मंच के साथ रहेगा?

कक्षा सीखने के लिए नहीं है

ऑनलाइन तकनीकों में एडटेक निवेश के केंद्र में कक्षा के 'एहसास' को बाधित करने का आह्वान है।

ऐतिहासिक रूप से कक्षा आधुनिक विश्वविद्यालय और कॉलेज के लिए सीखने-सिखाने की प्रक्रिया के मूल में है। आदर्श रूप से, कक्षा व्याख्यान प्रारूप का उद्देश्य विचारों के इर्द-गिर्द बातचीत के माध्यम से शिक्षक और छात्र की समझ को विकसित करना है। यह शिक्षक और छात्र को एक बौद्धिक संरचना के तहत जोड़ता है, जो आगे प्रश्नों, शंकाओं और आकस्मिक वाकयों के दायरों में आता है। इस प्रकार कक्षा शिक्षक-विद्यार्थियों की बातचीत को समेकित करने के लिए केवल एक भौतिक स्थान नहीं है, बल्कि यह सचमुच यह वह स्थान है जहां एक सामाजिक गतिविधि के रूप में सीखना होता है।

सदृश कक्षा के विपरीत, ऑनलाइन सीखने के लिए एडटेक रणनीति मूल रूप से 'एल्गोरिदमिक आर्किटेक्चर' और 'बिजनेस मॉडल' (डिजिक, 2018, 117-136) द्वारा संचालित है। जैसा कि डच मीडिया के विद्वान जे. वान डिज्क, टी. पोएल और एम. डी वाल तर्क देते हैं कि शैक्षणिक दर्शन जो ऐसे कॉर्पोरेट असेंबल किए गए ऑनलाइन पाठ्यक्रमों को रेखांकित करता है, वह है 'डेटाफिकेशन और वैयक्तिकरण'। एडटेक कंपनियों का मुख्य दावा यह है कि वे आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, टीचिंग एनालिटिक्स, क्लाउड कंप्यूटिंग और लर्निंग ऐप्स को तैनात करके कस्टमाइज्ड एजुकेशन को संगठित और प्रस्तुत कर सकती हैं। एडटेक कंपनियों के लिए सीखन वैयक्तिक-केंद्रित, अनुकूलित और भावी विश्लेषिकी पर आधारित है। एल्गोरिदम शिक्षक के पेशेवर निर्णय को 'सीखने' के साथ बदल सकता है। सीखने का आभासी प्रतिमान यह विश्वास दिलाने की कोशिश करता है कि सीखने की प्रक्रिया व्यक्तिगत तरीके से प्रतिबंधित और नियंत्रित तरीके से सम्पन्न

होती है। एक अनुकूलित एल्गोरिद्म के माध्यम से होता है जो सीखने में शामिल लोगों की क्षमताओं, भावनात्मक अवस्थाओं और मनोवैज्ञानिक अवस्थाओं को ट्रैक, मैप और संग्रहीत करता है।

बहुचर्चित अनुकूलित शिक्षा उत्पादों में उपयोगकर्ता-छात्र को एल्गोरिदम के साथ प्रशिक्षण देना शामिल है। प्रत्येक डिजिटल इंडेंट, एक लाइक बटन के रूप में, एक इमोजी, एक प्रश्नोत्तरी, एक सर्वेक्षण या एक क्लिक उपयोगकर्ता-छात्र के व्यवहार-मनोवैज्ञानिक प्रोफ़ाइल के संयोजन में जोड़ता है, जिसे कानूनी सुरक्षा के अभाव में बदल दिया जा सकता है। विशेष रूप से स्वामित्व वाले कच्चे माल का मंच द्वारा पुनर्खरीद किया जाना है। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (एआई) के सार स्वचालित निर्देश एक व्यक्ति को कौशल के निष्क्रिय अधिग्रहण के लिए प्रशिक्षित और संशोधित करने के लिए डिज़ाइन किए गए हैं, जो एक सामाजिक गतिविधि के रूप में सीखने के विपरीत है जिसमें गहन चिंतन शामिल है।

व्यक्तिगत निष्क्रिय कौशल अधिग्रहण के उद्देश्य के साथ-साथ राष्ट्रीय शिक्षा नीति 'मल्टीपल एंट्री और एक्जिट' विकल्प की वकालत करने पर भी जोर देता रहा है जिसे दिप्सिता धर "पसंद के घातक भ्रम" के रूप में देखती हैं एक प्रमाण पत्र अर्जित करने के लिए कॉलेज में एक वर्ष पर्याप्त होगा। यदि आप दो वर्ष पास कर लेते हैं, तो डिप्लोमा प्राप्त किया जा सकता है। डिग्री प्राप्त करने के लिए तीन वर्ष और बहु-विषयक स्नातक की डिग्री प्राप्त करने के लिए चार वर्ष लगेंगे। छात्र अलग-अलग वर्षों में अलग-अलग समय पर अलग-अलग कॉलेजों में और बाहर लग सकता है। इन एकाधिक निकास और प्रविष्टियों की सुविधा एक अकादमिक बैंक ऑफ क्रेडिट (एबीसी) होगी जो सभी पाठ्यक्रम क्रेडिट को डिजिटल रूप से संग्रहीत करेगा और कई वर्षों में विभिन्न उच्च शिक्षा संस्थानों से अर्जित होने पर भी उन्हें किसी भी तरह से अनुकूल बना देगा।

वाकई, लचीलापन और 'एकाधिक प्रवेश और निकास' कक्षा की अखंडता को जिस प्रकार खत्म करता है, ठीक उसी प्रकार इस तरह सीखने का माध्यम समूह एकजुटता नष्ट करता है। इसके अलावा, जैसा कि धर ने हमें सही चेतावनी दी है, कई सामाजिक और वित्तीय कारणों से किसी छात्र को कार्यक्रम को बीच में ही बंद करने पर मजबूर होना पड़ता है। इसके अलावे, ठीक विपरीत बात तब होती है जब कोई छात्र वित्तीय, लिंगीय, जातीय या अन्य किसी कारण से कॉलेज छोड़ता है। उसके छीजन को व्यक्तिगत पसंद का दर्जा दे दिया जाता है।

भरोसे की समस्या

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 को एक विघटनकारी के रूप में सफल होने के लिए पिछली बौद्धिक स्थिति और भारत के सार्वजनिक उच्च शिक्षा संस्थानों की सद्भावना को समाप्त करने या गंभीर रूप से नुकसान पहुंचाने की आवश्यकता है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति के लिए वैचारिक आधार अच्छी तरह से तैयार किया गया, जब मोदी के नेतृत्व वाली सरकार पहले कार्यकाल के दौरान (2014-19) एक अभूतपूर्व बुद्धिजीवी विरोधी अभियान शुरू किया गया था, जिसमें जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, जादवपुर विश्वविद्यालय, रामजस कॉलेज(दिल्ली विश्वविद्यालय, भारतीय फिल्म और टेलीविजन संस्थान, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, जामिया मिल्लिया इस्लामिया, भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (मद्रास) और हैदराबाद विश्वविद्यालय को लक्षित किया गया था। यह बुद्धिजीवी विरोधी अभियान स्वतंत्र भारत में पहला था जिसका उद्देश्य सार्वजनिक विश्वविद्यालयों और कॉलेजों की 'वैचारिक सफाई' के लिए परिसरों को राष्ट्र-विरोधी और 'देशद्रोही' शैक्षणिक संस्कृतियों से मुक्त करना था (डिसूजा, 2021. 23-52) ।

इस हमले के बारे में विशेष रूप से चौंकाने वाली बात यह थी कि सरकार समर्थक इलेक्ट्रॉनिक मीडिया चैनलों और सोशल मीडिया की दोहरी मार ने विश्वविद्यालय के छात्रों की निंदा करने के लिए एक लोकप्रिय अपील का निर्माण करने के लिए

काम किया, शोधकर्ताओं को करदाताओं के पैसे पर परजीवी के रूप में बताने का काम किया और सोचा कि यह कई फैकल्टी पर देशभक्ति विरोधी भावनाओं को भड़काने का आरोप लगाने के लिए उपयुक्त है। अभियान ने साबित कर दिया कि सार्वजनिक कल्पना को ट्रोलिंग, गलत सूचना, सोशल मीडिया हरकतों और यहां तक कि सरकार समर्थक समाचार चैनलों द्वारा दिए गए कुछ मानक प्रचार द्वारा सफलतापूर्वक कब्जा कर लिया जा सकता है।

डिजिटल मीडिया, दूसरे शब्दों में, को जब राजनीतिक और वैचारिक बुनियादी ढांचे के रूप में हथियार बनाया जाता है, तो अकादमिक दुनिया को मात देने, चिल्लाने और अभिभूत करने के लिए आसानी से तैनात किया जा सकता है। यह सरल निष्कर्षों पर संदेह को प्राथमिकता देता है। यदि 'व्हाट्सएप यूनिवर्सिटी' द्वारा 'सूचना-अग्रेषण' का चुस्त प्रसार जारी रहेगा, तो अकादमिक विश्वविद्यालय जनता को जीतने में बुरी तरह विफल हो जाएगा।

हालांकि, यह कहना गलत होगा कि व्हाट्सएप विश्वविद्यालय की शक्ति केवल इस बात में निहित है कि वह कितनी तेजी से फर्जी समाचार या गलत सूचना प्रसारित करता है। इसके बजाय, जैसा कि राहेल बॉट्समैन का तर्क है, डिजिटल प्रौद्योगिकियों की विश्वसनीयता और अनुनय विश्वास पैदा करने पर ज़ोर देता है।

पहले, निर्णायक, व्यवस्थापक,दरबान, अधिकारी, निगरानीकर्ता और विशेषज्ञ उत्तरदायित्वपूर्ण तरीके से जुड़े हुये होते थे। मसलन, अकादमिक प्रोफेसर और विश्वविद्यालय का बौद्धिक आधार विषय विशेषज्ञों की प्रमाणित दक्षता है। इसके विपरीत, डिजिटल तकनीकों में साख छैतिज या विभाजित होता है, क्योंकि रेटिंग के जरिये गुणवत्ता आँकी जाती है। मसलन, उबर या अन्य किसी सेवा की गुणवत्ता का आकलन उपभोगकर्ताओं की प्रतिप्राप्ति(पसंद, नापसंद) के जरिये किया जाता है। बॉट्समैन के अनुसार, डिजिटल युग में शक्ति, हुनर और सत्ता के पुराने स्त्रोत की उपेक्षा की जा रही है।

शिक्षा के लिए प्रभावित करनेवालों का उदय

हाल के वर्षों में शिक्षा के लिए प्रभावित करनेवालों के उद्भव और प्रसार ने कठोरता और जांच के लिए मौजूदा शैक्षणिक सम्मेलनों को चुनौती देने के लिए पूरी तरह से एक अलग ऑनलाइन प्रारूप तैयार किया है। गिल-क्विंटाना और विडा डी लियोन द्वारा व्यापक परिभाषा में प्रभावित करने वाला, 'बड़े सामाजिक समूहों को प्रभावित करने में सक्षम होता है। वर्तमान में खान जी एस रिसर्च सेंटर (पटना, बिहार) के पास YouTube पर शीर्ष स्थान के साथ भारत का शैक्षिक प्रभावक बाजार तेजी से बढ़ रहा है। 28 वर्षीय फैसल खान, जिन्हें अक्सर उनके अनुयायियों द्वारा खान सर कहा जाता है, सरकारी नौकरियों के लिए विभिन्न प्रतियोगी परीक्षाओं का प्रयास करने वाले उम्मीदवारों को प्रशिक्षित करते हैं। प्रभावशाली खोज इंजन कोरुज़ के अनुसार, खान सर के पास 15.2 मिलियन का ग्राहक आधार है, उनके वीडियो के लिए औसत दृश्य 4.9 मिलियन है।

खान सर के शिक्षण की गुणवत्ता और उनके पाठ्यक्रमों की सामग्री का आकलन में एल्गोरिथम वास्तुकला का उपयोग है। उनकी शैक्षिक सामग्री की वैधता और विश्वसनीयता का अंदाजा इस बात से लगाया जाता है कि वह कितना बड़ा ग्राहक आधार एकत्र करता है, प्राप्त पसंदों की संख्या, पंजीकृत विचार और टिप्पणी अनुभाग में उत्पन्न जुड़ाव से। उनके शिक्षण का मूल्यांकन इसी आधार पर किया जाता है, जैसे कि उबर के मामले में पूरी तरह से उपयोगकर्ताओं के अनुभव से उत्पन्न विश्लेषण पर। इस तरह का सत्यापन अभ्यास, अधिक स्पष्ट रूप से, अकादमिक विश्वविद्यालय के प्रोफेसर के ठीक विपरीत है, जिनके योगदान का आकलन केवल विशेषज्ञों और सहकर्मी समीक्षकों के माध्यम से किया जा सकता है।

शिक्षा को प्रभावित करने वाला उद्योग केवल वहीं कार्य कर सकता है और फल-फूल सकता है, जहां शिक्षा और सीखने के कौशल को परीक्षा की तैयारी, समस्या समाधान, नीरस सूचनाओं को याद रखने और व्यावसायिक प्रशिक्षण तक सीमित कर दिया जाता है। भारत में, एडटेक कंपनियों, शैक्षिक प्रभावितों और उनके शैक्षिक उत्पादों की एक डिजिटल तिकड़ी,

वास्तव में, एक दुर्जेय शैक्षिक पारिस्थितिकी तंत्र में तेजी से जुड़ रही है। निर्देश के लिए पहले से रिकॉर्ड किया गया वीडियो या एसिंक्रोनस प्रारूप शैक्षिक प्रभावक को, शिक्षण सामग्री को शैक्षिक उत्पादों में बदलने में सक्षम बनाता है, जिसकी पहुंच ब्रांडिंग अभ्यास के माध्यम से मुद्रीकृत की जा सकती है। फिर भी, सामाजिक संपर्क के माध्यम से रचनात्मक सोच और सीखने को सक्षम करने की कोशिश करते समय शैक्षिक प्रभावक निश्चित रूप से कम आएंगे।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति दुविधापूर्ण है

यह संभव है कि निर्देश -मोड और सीखने के तरीके के बीच शिक्षण परिणामों में गहरी खाई के बारे में जागरूकता ने सरकार को एनईपी के जरिए कौशल, विशेष कौशल और व्यावसायिक प्रशिक्षण की आवश्यकता पर बात करने के लिए प्रेरित किया है।

वास्तव में यह तर्क दिया जा सकता है कि निकट भविष्य में रोजगार के अवसर तेजी से बदलती प्रौद्योगिकियों, अप्रचलन, अतिरेक और औसत व्यक्ति के लिए कई करियर बदलाव करने की आवश्यकता जैसी चुनौतियों से घिरे होंगे। नतीजतन, यह दावा किया जा सकता है कि मौजूदा उच्च शिक्षा डिजाइन और सार्वजनिक विश्वविद्यालय उद्योग 4.0(डिजिटलीकरण, कृत्रिम बुद्धि, ब्लॉक श्रृंखला, बड़े डेटा, जीनोम इंजीनियरिंग पर आधारित नई अर्थव्यवस्था, अप अर्थव्यवस्था, आदि) से निपटने के लिए छात्रों को सार्थक रूप से तैयार करने में अक्षम होंगे।

दूसरी ओर, इसकी एक जबरदस्त काट हो सकती है। कौशल के आधे जीवन के युग में उच्च शिक्षा की आवश्यकता है कि छात्रों को पहले से कहीं अधिक अपनी कक्षा के साथियों और बैच के साथियों के साथ मजबूत भावनात्मक बंधन बनाए रखते हुए गहन चिंतन और नागरिकता प्रशिक्षण जैसी टिकाऊ क्षमता विकसित करने में योगदान करे। यही वह स्थायी अधिगम है जिसके साथ छात्र सार्थक रूप से अनुकूलन कर सकते हैं और उस तीव्र गति से आगे रह सकते हैं जिस गति से तकनीकी परिवर्तन हो रहे हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति से जब उच्च अलंकारिक और काल्पनिक स्वर को हटा दिया जाता है, तो एक जबरदस्त साजिश का पता चलता है। यह एक ऐसी शिक्षा नीति है जो भारत के युवाओं और शिक्षार्थियों को उस रैंक में शामिल होने के लिए कार्य करती है जिसका कार्यकर्ता विद्वान गाई स्टैंडिंग ने अनिश्चितता के रूप में वर्णन किया है : लचीले श्रम अनुबंधों, अस्थायी नौकरियों, आकस्मिकता, स्व-रोजगार और आंशिक कार्य (स्टैंडिंग, 2011)। संकटपूर्ण समाज में अधिकतम धन कुछ हाथों में केंद्रित हो जाता है। ऐसे में शिक्षा न तो सामाजिक गतिशीलता को चलाएगी और न ही नागरिक सशक्तिकरण के लिए प्रयास करेगी।

एक संकटपूर्ण समाज निजी तौर पर संचालित कॉर्पोरेट विश्वविद्यालय के अंत की बात नहीं कर सकता है। इसके बजाय, निजी विश्वविद्यालय मौजूदा यथास्थिति को चुनौती देने के राजनीतिक प्रश्न को दरकिनार कर अमीरों और विशेषाधिकार प्राप्त स्कूलों के रूप में प्रभावी ढंग से काम करेंगे। पिछले एक दशक के भीतर, भारत ने वास्तव में स्व-वित्तपोषित निजी विश्वविद्यालयों की संख्या में नाटकीय वृद्धि देखी है। मार्च में, उदाहरण के लिए, गुजरात विधानसभा ने सर्वसम्मति से गुजरात निजी विश्वविद्यालय (संशोधन) विधेयक (2022) पारित किया, जिसने 11 नए निजी विश्वविद्यालयों को स्थापित के लिए कॉरपोरेट्स और धार्मिक और सामाजिक ट्रस्टों का मार्ग प्रशस्त किया।

निजी विश्वविद्यालय वर्तमान में न तो कानूनी रूप से बाध्य हैं और न ही भेदभावपूर्ण जाति और हाशिए के आर्थिक समूहों की सामाजिक गतिशीलता को सक्षम करने के लिए प्रोत्साहित किए जाते हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति में जाति-आधारित आरक्षण शब्द का कोई उल्लेख नहीं है और सामाजिक और आर्थिक रूप से भेदभाव करने वालों की 'योग्यता को प्रोत्साहित करने' के उपाय उपलब्ध कराने के बारे में केवल एक अस्पष्ट इशारा पेश किया गया है। कोई आश्चर्य नहीं कि

भेदभाव और सामाजिक गतिशीलता को दूर करने के लिए किसी भी कानूनी साधन के अभाव में भारत में आलीशान निजी संस्थानों में उच्च शिक्षा से केवल विशेषाधिकार को सुदृढ़ करने की उम्मीद की जा सकती है।

संक्षेप में राष्ट्रीय शिक्षा नीति

वित्तीय कटौती, कुप्रबंधन और ढहते बुनियादी ढांचे के कारण भारत की उच्च शिक्षा प्रणाली अब कई दशकों से उलझी हुई है। आमूलचूल परिवर्तन की मांग आश्चर्यजनक नहीं है। वर्षों से संस्थागत गिरावट के बावजूद सार्वजनिक विश्वविद्यालय खत्म नहीं हुये हैं। कुछ भी हो, भारत की उच्च शिक्षा की शानदार कद देश के कुछ सर्वश्रेष्ठ प्रोफेसरों को बरकरार रखती है, विश्वविद्यालय कक्षा को सीखने के लिए 'स्थान' के रूप में बनाए रखती है, अकादमिक स्वतंत्रता को प्रोत्साहित करती है और आरक्षण जैसी सकारात्मक नीतियों के माध्यम से सामाजिक गतिशीलता को सक्षम बनाती है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, हालांकि, ऐसी ताकत पर भरोसा और इसे मज़बूत कर आगे निर्माण नहीं करना चाहता है। इसके बजाय, इसका उद्देश्य व्यवधान पैदा कर उच्च शिक्षा के अर्थ में ही एक कठोर संशोधन करना है। इस तरह की तबदीली के मुताबिक उच्च शिक्षा में न तो नागरिकता का पोषण शामिल होगा और न ही सामाजिक और राजनीतिक शक्ति की आलोचना विकसित करने का लक्ष्य प्राप्त होगा। इसके बजाय, कौशल के आधे वक़्त के लिए प्रशिक्षण को एडटेक कंपनियों और अन्य शैक्षिक कॉर्पोरेट के साथ सीखने के लिए अहम माना जाएगा। कौशल के लिए प्रशिक्षण को एडटेक कंपनियों और अन्य शैक्षिक कॉर्पोरेट प्लेटफार्मों के साथ एल्गोरिथम आधारित निर्देशात्मक सामग्री तैयार करने और भेजने के लिए अहम माना जाएगा।

एक मोड-ऑफ-इंस्ट्रक्शन फ्रेमवर्क के माध्यम से भारत में उच्च शिक्षा में डिजिटल लर्निंग पैकेज और एसिंक्रोनस वीडियो उत्पादों को बढ़ावा देने वाले शैक्षिक प्रभावकों का वर्चस्व होगा। अकादमिक प्रोफेसर की अहमियत को कम करना और कक्षा को एक सामाजिक गतिविधि के रूप में खत्म कर एक सहकर्मी समूह के माध्यम से महत्वपूर्ण प्रतिबिंब के स्रोत के रूप में सीखने की धारणा को हाशिए पर डालना राष्ट्रीय शिक्षा नीति का उद्देश्य है और यहां तक कि जहां आलीशान विश्वविद्यालय शिक्षण के लिए मौजूद हैं, वहाँ यह सबसे अधिक संभावना है कि वे निजी स्वामित्व में जाएंगे और नागरिक सशक्तिकरण को सक्षम करने के बजाय सामाजिक बहिष्कार के माध्यम से विशेषाधिकार का वर्चस्व होगा। राष्ट्रीय शिक्षा नीति डिजाइन और वादे दोनों में, न्यू इंडिया को 'अस्थिर समाज' के रूप में समेकित करने का लक्ष्य रखेगा।

संदर्भ:

बॉट्समैन, राहेल। किस पर तुम्हें भरोसा हो सकता है? कैसे तकनीक ने हमें एक साथ लाया और यह हमें अलग क्यों कर सकती है। पेंगुइन बिजनेस: यूके, 2018, पीपी.8-9 और पीपी.81-108।

डिज्क, जोस वी., थॉमस पोएल और मार्टिजन डी वाल। प्लेटफार्म सोसाइटी: एक कनेक्टिव वर्ल्ड में सार्वजनिक मूल्य, न्यूयॉर्क: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2018: 117-136।

डिसूजा, रोहन, 'हिंदुत्व एंड द पॉलिटिकल सिटीजन: अनमेकिंग हायर एजुकेशन इन मोदीज इंडिया' इम्तियाज अहमद और लियान झांग (एड।), इनोवेशन इन एजुकेशन। पाठक शमाबेश: बांग्लादेश, 2021: 23-52।

गिल-क्विंटाना, जे., विडा डी लियोन, ई. 'इंस्टाग्राम पर शैक्षिक प्रभावक: शैक्षिक चैनलों, दर्शकों और आर्थिक प्रदर्शन का विश्लेषण', 43, प्रकाशन 9, 2021: 3।

हमन, जूलियन। प्रोफेसरों का निर्माण: अकादमिक भर्ती में मूल्यांकन और मान्यता, विज्ञान के सामाजिक अध्ययन, 49, संख्या 6 (2019): 919-941।

कन्नमन, डैनियल। थिंकिंग, फास्ट एंड स्लो, एफएसजी एडल्ट: न्यूयॉर्क, रीप्रिंट संस्करण 2013।

खड़ा है, यार। द प्रीकेरिएट: द न्यू डेंजरस क्लास। न्यूयॉर्क: ब्लूम्सबरी अकादमिक, 2011।

(रोहन डिसूजा ग्रेजुएट स्कूल ऑफ एशियन एंड अफ्रीकन एरिया स्टडीज, क्योटो यूनिवर्सिटी, जापान में प्रोफेसर हैं। सौजन्य: द इंडिया फोरम।)

राष्ट्रीय शिक्षा नीति : आघात व विरोध

जनवरी के अंत में आए इकोनॉमिक सर्वे ने माना कि सरकार के पास उन 25 करोड़ बच्चों की पढ़ाई के बारे में, जिन्होंने स्कूलबंदी के दो साल कक्षा के बाहर गुज़ारे, कोई आँकड़ा नहीं है। 2019-20 के बाद के अधिकृत आँकड़े उपलब्ध नहीं हैं जिससे कि कोविड के चलते जबरन थोपी गई स्कूलबंदी का असर मापना मुश्किल हो जाता है। अन्य क्षेत्रों की तरह सरकार ने यहाँ भी आँकड़ों को दबाने की नीति अपनाई है ताकि उसकी नाकामी को छुपाया जा सके। ऐसे में सर्वे को शिक्षा-विरोधी प्रथम संस्था की 'असर' रपट के आँकड़ों का सहारा लेना पड़ा, जिसके अनुसार 6-14 साल के उन बच्चों का अनुपात जो स्कूल में नामांकित नहीं हैं, 2.5% से बढ़कर 4.6% पहुँच गया है। आर्थिक तंगी, पलायन व मुफ़्त शिक्षा के चलते सरकारी स्कूलों में संख्या बढ़ी है मगर 60% ग्रामीण बच्चों को कोई पाठ्य सामग्री या गतिविधि मयस्सर नहीं हुई। इस परिदृश्य में, डिजिटल खाई या दो साल की स्कूलबंदी की परवाह किए बग़ैर, फ़रवरी की शुरुआत में अपने बजटीय भाषण में वित्त मंत्री ने डिजिटल विश्वविद्यालय खोलने तथा स्कूलों के लिए ई-सामग्री तैयार करने की घोषणा की। सितंबर की शुरुआत में दिल्ली सरकार ने दिल्ली मॉडल वर्चुअल (आभासी) स्कूल के लिए 800 आवेदन आने की बात करते हुए, अंतिम तिथि बढ़ाने की घोषणा की। अखिल भारत जनतांत्रिक छात्र संगठन (AIDSO) ने विरोध जताते हुए इसे विद्यार्थी विरोधी क़दम बताया। इस बीच प्रधानमंत्री ने एक बार फिर डिजिटल विश्वविद्यालय को सीटों की कमी के स्थाई (व सस्ते) इलाज के रूप में पेश किया। इस सार्वभौमिक सच के मद्देनज़र कि शिक्षकों व सहपाठियों के साथ सामाजिक अंतःक्रिया युवाओं व बच्चों के सर्वांगीण विकास के लिए अनिवार्य है, डिजिटल फ़ितूर को परोसना इस नीति की ग़लत प्राथमिकता का सबूत देता है।

7 जुलाई को आत्मनिर्भरता का राग अलापती और पाठ पढ़ाती केंद्र सरकार ने छत्तीसगढ़ सरकार को 2,100 करोड़ रुपये की विश्व बैंक परियोजना के लिए मंज़ूरी दे दी। इस परियोजना के तहत ऋण की यह राशि पाँच साल के दौरान मिलेगी और राज्य सरकार को इसे 20 साल में लौटाना होगा। ऋण के इस लुभावने चेहरे के पीछे उसकी शर्तों के ख़ूँख़ार दाँत छिपा लिए जाते हैं जिनके तहत राज्य व्यवस्था की लोगों के प्रति संवैधानिक प्रतिबद्धता कमज़ोर पड़ती जाती है। विश्व बैंक का दल राज्य का दौरा करेगा, फिर राज्य व केंद्र सरकारें विश्व बैंक के साथ मिलकर एक विस्तृत परियोजना रपट तैयार करेंगी जिसे विश्व बैंक तथा केंद्र के समक्ष साल के अंत तक मंज़ूरी प्राप्त करने के लिए पेश किया जाएगा। 1994 की डीपीईपी परियोजना से लेकर 2021 में 6 राज्यों में 3500 करोड़ रुपये के स्टार्स कार्यक्रम तक, सार्वजनिक शिक्षा में विश्व बैंक का शिकंजा कसता ही गया है। याद रखने की ज़रूरत है कि विश्व बैंक को न तो शिक्षा पर कोई विशेषज्ञता हासिल है और न ही इसे जनता की ओर से शिक्षा में नीतिगत हस्तक्षेप के लिए कोई अधिदेश मिला है।

7 सितंबर को केंद्रीय मंत्रिमंडल ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति के तहत 27,360 करोड़ रुपये के ख़र्चे पर देशभर के लगभग 10 लाख सरकारी स्कूलों में से 14,500 स्कूलों को 'श्रेष्ठ स्तर' तक लाने की योजना को मंज़ूरी दे दी। इन्हें पीएम स्कूल्ज़ ऑफ़ राइज़िंग इंडिया (पीएमश्री) के नाम से जाना जाएगा मगर इसमें भाग लेने की ब्लैकमेलनुमा शर्त राज्यों द्वारा राष्ट्रीय शिक्षा नीति को पूरी तरह लागू करना होगी। योजना के तहत इन स्कूलों को हर साल 2 करोड़ रुपये मिलेंगे जिसमें से 40% फ़ंड प्रिंसिपल के अधीन होगा। स्कूलों के मानकों में राष्ट्रीय शिक्षा नीति का पालन करना और छात्रों का भारतीय परंपरा में रचा-बसा होना शामिल होगा। एक तरह से केंद्र सरकार इन स्कूलों को काठ के घोड़े की तरह इस्तेमाल करेगी। यह संघवाद पर केंद्र का एक और हमला तो है ही, उसके इस दावे की पोल भी खोलता है कि राशिनी को व्यापक समर्थन प्राप्त है।

अगस्त की शुरुआत तक विकलाँग, अनुसूचित, पिछड़े व अल्पसंख्यक श्रेणियों के शोधार्थियों को महीनों से सामाजिक न्याय व अधिकारिता मंत्रालय से दिए जाने वाले राष्ट्रीय वज़ीफ़ों का भुगतान नहीं हुआ था। इसका कारण मार्च से वित्त मंत्रालय द्वारा निर्देशों व प्रक्रिया में बदलाव लाना बतलाया गया। इस बदलाव के तहत 200 विकलाँग व 2,300 पिछड़े/अनुसूचित जाति के वर्गों के शोधार्थियों को यूजीसी के बदले एक नई केंद्रीय एजेंसी के माध्यम से भुगतान किया जाना था, मगर इसकी व्यवस्था नहीं हुई। ख़ामियाज़ा शोधार्थियों को भुगतना पड़ा। व्यापक विरोध के बाद अगस्त के मध्य में प्रधानमंत्री कार्यालय को मजबूर होकर 30 सितंबर तक इन वज़ीफ़ों का भुगतान यूजीसी द्वारा ही किए जाने के आदेश देने पड़े। इसके एक हफ़्ते में वो भुगतान शुरु हुए जिनके चलते शोधार्थी महीनों से चक्कर काट रहे थे और संघर्ष कर रहे थे। यह पूरा प्रकरण उसी क्रूर व आत्मकेंद्रित सत्ता का परिचायक है जो, प्रभावित होने वाले लोगों की हक़ीक़त से बेपरवाह, ज़रूरी व्यवस्था बनाए बग़ैर और सलाह किए बिना ही, अपनी सनक में कोई भी निर्णय थोप देता है। शिक्षा जैसा विचारशील क्षेत्र भी अब इसी विनाशकारी सनक की गिरफ़्त में है।

संविधान के संघीय ढाँचे पर नीट-सीयूईटी की चोट

पिछले साल के अंत तक भी राज्यपाल आर एन रवि ने तमिल नाडु के उस विधेयक पर हस्ताक्षर नहीं किए थे जिसमें 12वीं कक्षा के अंकों के आधार पर मेडिकल कोर्स में प्रवेश का प्रावधान किया गया है। तमिल नाडु समान स्कूल व्यवस्था के स्टेट प्लेटफ़ॉर्म के महासचिव पी बी प्रिंस गजेंद्र बाबू द्वारा दायर की गई सूचना के अधिकार की अर्ज़ी के जवाब से यह बात सामने आई कि विधान सभा द्वारा 13 सितंबर को पारित विधेयक, जिसे राष्ट्रपति को भेजने के अनुरोध के साथ राज्यपाल को भेजा गया था, राजभवन में ही लम्बित पड़ा था। 4 फ़रवरी को द्रमुक व कॉग्रेस के सांसद, राज्य सभा में विरोध दर्ज करते हुए, सदन से बाहर चले गए क्योंकि राज्यपाल ने नीट से छूट देने वाले विधेयक को महीनों लटकाने के बाद वापस लौटा दिया था। 8 फ़रवरी को तमिल नाडु विधान सभा के विशेष सत्र में विधेयक को, भाजपा के चार विधायकों को छोड़कर, सर्वसम्मति से दोबारा पारित किया गया। अध्यक्ष ने राज्यपाल द्वारा इतना समय लेने व उनके पत्र को सार्वजनिक किए जाने पर असंतोष जताया। बहस में हिस्सा लेते हुए, स्वास्थ्य मंत्री ने राज्यपाल के सभी प्रश्नों का जवाब दिया। तमिल नाडु का नीट-विरोध राज्य के दोनों प्रमुख दलों को साथ लाता है। इसकी शुरुआत फ़रवरी 2017 में पारित नीट-विरोधी प्रथम विधेयक से हुई थी, जिसे कि राष्ट्रपति ने मंज़ूर नहीं किया था। इस वर्ष मार्च की शुरुआत में यूक्रेन से लौटे चतुर्थ वर्ष के मेडिकल छात्र नवीन शेखरप्पा की मौत ने कर्नाटक में भी नीट-विरोधी आवाज़ें उभार दीं। नीट की परीक्षा राज्यों के अधिकार क्षेत्र में हस्तक्षेप। है इसके अलावा नीट में सफल रहने वाले 99% विद्यार्थियों के पीछे कोचिंग का हाथ होने को मेडिकल शिक्षा के प्रत्यक्ष आरक्षण के रूप में देखा जाना चाहिए। 11 अप्रैल को तमिल नाडु विधान सभा ने, एक बार फिर भाजपा के विधायकों को छोड़कर, 'सर्व सम्मति' से सीयूईटी के ख़िलाफ़ प्रस्ताव पारित किया। नीट से सबक़ लेते हुए सीयूईटी को भी विविध स्कूल व्यवस्थाओं तथा स्कूली शिक्षा की अहमियत पर आघात के रूप में देखा गया है। इन संदर्भों में कि राजकीय बोर्ड में 80% विद्यार्थी वंचित वर्गों से आते हैं और इस बोर्ड में एनसीईआरटी का वो कोर्स नहीं पढ़ाया जाता है जिसपर नीट व सीयूईटी आयोजित होती हैं, ये परीक्षाएँ केवल कोचिंग केंद्रों के हित में हैं।

21 फ़रवरी को 2022-23 के बजट के सकारात्मक असर पर आयोजित एक वेबिनार में बोलते हुए प्रधानमंत्री ने कहा कि यह बजट राष्ट्रीय शिक्षा नीति को लागू करने में एक अहम भूमिका निभाएगा तथा डिजिटल विश्वविद्यालय खोलने का फ़ैसला सीटों की कमी की समस्या का समाधान हो सकता है। उन्होंने सरकार की नीति के चलते डिजिटल खाई के सिमटने का दावा भी किया। 26 फ़रवरी को स्वास्थ्य क्षेत्र पर बजटीय घोषणाओं पर आयोजित वेबिनार में बोलते हुए प्रधानमंत्री ने प्राइवेट सेक्टर का मेडिकल शिक्षा के क्षेत्र में बड़े स्तर पर उतरने व राज्य सरकारों को उनके इस काम के लिए आसानी से ज़मीन उपलब्ध कराने के लिए अच्छी नीतियाँ बनाने का आह्वान किया। उन्होंने इसे विद्यार्थियों के देश से बाहर जाकर पढ़ने से होने वाले अरबों रुपयों के नुक़सान की रोकथाम के रूप में भी पेश किया। यानी, सरकार नए विश्वविद्यालय नहीं

खोलेगी, बल्कि डिजिटल संस्थानों के माध्यम से नामांकन दर बढ़ाने की जुगत भिड़ाएगी, वहीं पूँजीपतियों को मुनाफ़ा कमाने की प्रेरणा से संचालित निजी मेडिकल कॉलेज खोलने की राह आसान की जाएगी। यूक्रेन से लौटे विद्यार्थियों को कोई मदद न देकर वैसे भी सरकार ने यह साफ़ कर दिया था कि उसकी शैक्षिक चिंता के केंद्र में नागरिक या विद्यार्थी नहीं हैं, बल्कि वित्तीय समीकरण हैं। विरोधाभास यह है कि इसी नीति के चलते तो हज़ारों युवाओं द्वारा मेडिकल शिक्षा के लिए देश के बाहर का रुख़ किया जाता है! राशिनी के तहत सरकार चाह रही है कि हींग लगे न फीटकरी, रंग भी चोखा होवे! फिर लाखों रुपये का चढ़ावा चढ़ाकर मेडिकल की पढ़ाई पूरी करने वाले जिन मूल्यों और उद्देश्यों को लेकर डॉक्टरी के पेशे को अपनाएँगे वो समाज के कमज़ोर वर्गों के पक्ष में तो नहीं होगा।

15 मई को एआईएसएफ़ द्वारा चेन्नई में आयोजित एक सम्मेलन में तमिलनाडु, महाराष्ट्र व केरल के शिक्षा मंत्रियों ने राशिनी की आलोचना व विरोध किया तथा नीट एवं सीयूईटी के साथ-साथ राशिनी को वापस लेने की माँग की। राज्यों के शिक्षा मंत्रियों ने इसे राज्यों के संघीय अधिकारों पर एक चोट बताया और साम्प्रदायिक, व्यावसायिक तथा अभिजात वर्गों के हितों में क़रार देते हुए छात्रों से संघर्ष आगे बढ़ाने की अपील की। उन्होंने वज़ीफ़ों के पोर्टल को वज़ीफ़े रोकने का धूर्ततापूर्ण प्रयास बताया। सम्मेलन में शिक्षा को वापस राज्यों के अधिकार क्षेत्र की सूची में शामिल करने, राशिनी को ख़ारिज करने, नीट-सीयूईटी को वापस लेने व वैकल्पिक नीति बनाने के प्रस्ताव पारित किए गए।

30 जुलाई को पटना विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों ने भाजपा अध्यक्ष जे पी नड्डा के शहर आने पर विरोध किया। विश्वविद्यालय कैंपस पहुँचने पर उन्हें घेरा गया व वापस जाने के नारे लगाए गए। प्रदर्शनकारियों ने पटना विश्वविद्यालय को केंद्रीय विश्वविद्यालय का दर्जा देने व राशिनी 2020 वापस लेने की माँग की।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यूजीसी) की बेशर्मी

17 मार्च को यूजीसी ने प्रस्ताव दिया कि चार साल की स्नातक स्तर की डिग्री में 7.5 ग्रेड पॉइंट पाने वाले विद्यार्थी को, स्नातकोत्तर डिग्री हासिल किए बिना ही, पीएचडी में प्रवेश दिया जाए। इस प्रावधान को यूजीसी के नए नियमों के प्रारूप में शामिल किया गया। इसी के साथ यूजीसी ने पाठ्यचर्या की रूपरेखा व चार वर्षीय कार्यक्रम के क्रेडिट सिस्टम का प्रारूप भी जारी किया। इसके तहत प्रथम तीन सेमेस्टरों में महज़ आरंभिक स्तर के सामान्य कोर्स - भाषा, गणित, 'भारत', स्वास्थ्य, योग आदि - रखे गए हैं जो स्नातक स्तर की पढ़ाई को खोखला बनाएँगे।

22 मार्च को यूजीसी द्वारा केंद्रीय विश्वविद्यालयों को एनटीए द्वारा आयोजित की जाने वाली सीयूईटी परीक्षा के आधार पर प्रवेश प्रक्रिया अपनाने का फ़रमान जारी किया गया। दिल्ली विश्वविद्यालय ने तो इसे अगले ही दिन अपना लिया। अकादमिक परिषद के कुछ सदस्यों ने इसे कोचिंग व वंचितों के बहिष्करण को बढ़ाने वाला बताकर अपनी असहमति दर्ज की। उन्होंने यह चिंता भी जताई कि इससे स्कूलों की पढ़ाई का महत्त्व और भी कम हो जाएगा।

अप्रैल की शुरुआत में यूजीसी के चार वर्षीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा के प्रारूप दस्तावेज़ पर नक़ल के आरोप लगे। यह बात सामने आई कि इसमें मिशिगन व एरिज़ोना विश्वविद्यालयों के दिशा-निर्देशों के अंशों की हू-ब-हू नक़ल की गई है। विडंबना यह रही कि यूजीसी ने आरोप की जाँच के लिए उसी समिति को ज़िम्मेदारी दी जिसपर यह आरोप लगा था! दिल्ली विश्वविद्यालय के लोकतांत्रिक शिक्षक मंच (डीटीएफ़) ने इल्ज़ाम लगाया कि पूरे-के-पूरे अनुच्छेद मिशिगन यूनिवर्सिटी के कॉलेज ऑफ़ लिटरेचर, साइंस एंड आर्ट्स के वेब पेज से तथा अन्य हिस्से एरिज़ोना यूनिवर्सिटी के अकादमिक नीति के दस्तावेज़ों से चुराए गए हैं! यानी, जिस संस्था पर अकादमिक निगरानी व नैतिक श्रेष्ठता बरतने की ज़िम्मेदारी थी वही अनैतिक तरीक़े से पाठ्यचर्या तैयार कर रही थी। वैसे, मिथक, अफ़वाह, पूर्वाग्रह और ज़ोर-ज़बरदस्ती को ज्ञान का प्रमाण व आधार मानने वाली दक्षिणपंथी ताक़तों के सामने मौलिक ज्ञान का सृजन न कर पाने तथा तथ्य-तर्क न बरत जैसी समस्याएँ तो रहती ही हैं।

1 सितंबर को यूजीसी ने कॉलेजों व विश्वविद्यालयों को, राशिनी के तहत, बहुविषयी संस्थानों में बदलने हेतु दिशा-निर्देश जारी करते हुए, तीन अलग-अलग राहें प्रस्तावित कीं। इसके अंतर्गत कॉलेजों की क्लस्टरिंग होगी तथा संस्थानों को दूसरे प्राइवेट संस्थानों के हिसाब से समय-सारणी बनानी होगी। एक विकल्प के तहत, दो संस्थान मर्ज भी किए जा सकेंगे, हालाँकि प्रबंधन एक का ही होगा। बहुत सम्भव है कि 'मर्जर' के इस योग के माध्यम से निजी क्षेत्र सार्वजनिक संस्थानों को हड़प/हज़म कर जाएँ। तीसरा विकल्प नए विषय जोड़ने का होगा। यूजीसी से पेड़ की उसी डाली को कटवाया जा रहा जिस पर वो बैठा है।

नेट तथा सीयूईटी में एनटीए की विफलता

9 जुलाई को नेट की परीक्षा के कई केंद्रों में अभ्यर्थियों को तकनीकी ख़ामियों का ख़ामियाज़ा भुगतना पड़ा। तीन घंटे की दो पालियों में कई केंद्रों पर घंटों की देरी हुई, जबकि केंद्रों पर मौजूद कर्मियों का कहना था कि गड़बड़ एनटीए के स्तर पर हुई थी और वो कुछ भी करने में असमर्थ थे। ऐसे केंद्रों पर विद्यार्थियों को बाहर भी नहीं जाने दिया गया और उल्टा उन्हें ही एक अंडरटेकिंग देने को कहा गया, जबकि एनटीए की नाकामी में उनका हाथ रहा हो! एनटीए के निदेशक विनीत जोशी ने एक हास्यास्पद बयान देते हुए परीक्षा केंद्रों पर हुई इस विफलता के लिए एनटीए की कड़ी सुरक्षा का हवाला दिया! साथ ही, प्रभावित विद्यार्थियों को इस मामले में एनटीए को वव्यक्तिगत रूप से लिखने को कहा गया। ऐसे में जबकि अधिकतर विद्यार्थी अपने केंद्रों पर सुबह 7 बजे ही पहुँच गए थे, उन्हें घंटों बिना खाना और पानी के बिताने पड़े तथा माँगने पर भी कुछ उपलब्ध नहीं कराया गया। जिन केंद्रों में परीक्षा आयोजित हो भी पाई, वहाँ भी कई तरह की दिक़्क़तें आईं जिनकी वजह से विद्यार्थियों का बेशक़ीमती वक़्त बर्बाद हुआ। असल में तो विद्यार्थियों को प्रताड़ित करने का सिलसिला परीक्षा से पहले-ही शुरु हो चुका था जब इसकी घोषणा का लंबा इंतज़ार कराया गया, परीक्षा तिथि महज़ चार दिन पहले बताई गई और एडमिट कार्ड तो बस एक दिन पूर्व जारी किए गए थे! नतीजतन, नेट की परीक्षा जिसे कि प्रेरित व उत्साहित करने का अनुभव होना चाहिए, एक प्रताड़ना में बदल दी गई।

15 जुलाई को सीयूईटी के पहले दिन, अंतिम क्षण में कई केंद्रों में बदलाव के कारण बहुत-से विद्यार्थियों की परीक्षा ही छूट गई। एनटीए ने इस बाबत कोई आधिकारिक बयान नहीं दिया। विद्यार्थियों ने शिकायत की कि जब उनके फ़ोन नंबर व मेल अड्रेस एनटीए द्वारा लिए गए थे, तो उन्हें केंद्रों में हुए बदलाव की पूर्व सूचना क्यों नहीं दी गई।

5 अगस्त को हुई सीयूईटी की परीक्षा में भी दिक़्क़तें आईं। कई केंद्रों पर परीक्षा रद्द हो गई, नई तिथियों का ऐलान नहीं किया गया। इस बार, पिछली दफ़ा की तरह व्यक्तिगत रूप से शिकायत करने की सलाह देने के बदले, एनटीए ने प्रभावित विद्यार्थियों को वेबसाइट पर जाकर ताज़ा जानकारी लेने को कहा! चार अगस्त को तो दूसरी पाली की परीक्षा ही रद्द कर दी गई थी! कई अभ्यर्थियों को तो एडमिट कार्ड ही नहीं मिले! चौथे चरण में भी तकनीकी ख़ामियों के चलते कई केंद्रों पर परीक्षा देर से शुरु हुई और अन्यों पर रद्द की गई।

सीयूईटी की तिथियों को लेकर लगातार तब्दीलियाँ, आयोजन और फिर परिणाम घोषित करने में हुई देरी के चलते जिस असमंजस व अनिश्चितता की स्थिति का निर्माण हुआ उसमें कई विद्यार्थी, प्रवेश, अकादमिक वर्ष व पढ़ाई की चिंता में, निजी विश्वविद्यालयों में प्रवेश लेने को मजबूर हुए। परिणाम 18 जुलाई से 4 अगस्त, फिर 12 अगस्त व 24 अगस्त तक टाले जाने के बाद आख़िरकार 26 अगस्त को घोषित किया गया। यानी, एक महीने से अधिक की देरी! जिस परीक्षा को दो चरणों में होना था, वो अंततः छः चरणों में आयोजित हो पाई!

परीक्षाओं को बेहतर ढंग से कराना तो दूर, एनटीए परीक्षाओं को नियमित ढंग से कराने में भी बुरी तरह नाकाम रहा तथा इसके द्वारा आयोजित परीक्षाएँ विद्यार्थियों के लिए बहिष्करण, ठगी और प्रताड़ना का सबब साबित हुई हैं। एक विविध देश में, लोगों की ज़रूरतों व स्थितियों से बेपरवाह और विकेंद्रीकरण या स्वायत्तता के मूल्यों को कुचलते हुए, 'एक राष्ट्र, एक परीक्षा' के भ्रामक जुमले के नाम पर केंद्रीकृत व कम्प्यूटरीकृत परीक्षा कराने की ज़िद भरी नीति का यही त्रासद व भयावह

अंजाम होना तय है। जीएसटी, नोटबंदी व 'लॉकडाउन' की तरह एनटीए को खड़ा करना भी तानाशाही ढंग से लिया गया फ़ैसला है। देश में परीक्षा आयोजित करने की सबसे बड़ी व ताक़तवर संस्था के पास न ही कोई ठोस नीति है और न न्यूनतम संवेदनशीलता। इस क्रूर संस्था को विद्यार्थियों की ज़िंदगियों व शिक्षा से खिलवाड़ करने की इजाज़त नहीं दी जा सकती है। आंदोलनों को इसे ख़ारिज करने की माँग उठानी होगी।

शिक्षकों के पद रिक्तियों व अनिश्चितता के हवाले

जब कर्नाटक में एक तरफ़ हिजाब के नाम पर उकसावे व नफ़रत का माहौल खड़ा करके छात्राओं को प्रताड़ित किया जा रहा था, तो वहीं दूसरी तरफ़ नियमितीकरण की माँग को लेकर सरकारी डिग्री कॉलेजों में अतिथि शिक्षक पचास दिनों से हड़ताल पर थे। राज्य के लगभग 430 कॉलेजों में महज़ 5,100 शिक्षक नियमित हैं, जबकि क़रीब 14,500 शिक्षक अतिथि पदों पर काम करने को मजबूर हैं। ये शिक्षक मात्र 11,000-13,000 तक के मासिक 'मानदेय' पर काम कर रहे हैं और इनके भुगतान में भी अनियमितता बरती जाती है। राज्य सरकार ने एक ऐसी राष्ट्रीय शिक्षा नीति लागू करने की घोषणा की है जिसके तहत सैकड़ों कॉलेजों में मुख्य विषयों तक के कोई शिक्षक नहीं हैं और कक्षाएँ हुए बिना ही विद्यार्थियों को सेमेस्टर परीक्षाएँ देनी हैं। इस स्थिति के ख़िलाफ़ दिसंबर 2021 में बेलागावी से, जहाँ कर्नाटक विधान सभा शीत सत्र के लिए बैठ रही थी, विरोध प्रदर्शन शुरु हुए। लंबे आंदोलन से घबराकर 14 जनवरी को उच्च शिक्षा मंत्री ने चार वर्गों में शिक्षकों का मानदेय बढ़ाकर 26,000 से 32,000 के बीच कर दिया लेकिन साथ ही काम के घंटे लगभग दोगुने कर दिए। इसका उद्देश्य शिक्षकों की एकजुटता तोड़ना भी था और नतीजा आधे शिक्षकों की छंटनी में भी सामने आया। भर्तियों की नई प्रक्रिया में 60,000 आवेदन आए और क़रीब 10,000 का चयन हुआ, मगर इससे असुरक्षा की स्थिति जस-की-तस बनी रही। शिक्षकों के अलावा, शिक्षा विभाग में 7,000 से ज़्यादा ग़ैर-शैक्षणिक पद भी रिक्त हैं। हर साल सैकड़ों कर्मी रिटायर हो रहे हैं और विद्यार्थियों की संख्या बढ़ती जा रही है, मगर आख़िरी बार भर्तियाँ 2009 व 2017 में हुई थीं। सोचने की बात यह है कि हिजाब पहनकर पढ़ाई करने की आज़ादी की जायज़ माँग करने वाली छात्राएँ ऐसे कॉलेजों में प्रवेश के लिए लड़ रही हैं जहाँ पढ़ाई की परिस्थितियाँ नीतिगत रूप से शोचनीय हैं। जहाँ सत्ता एक संघर्ष को दूसरे को दबाने के लिए इस्तेमाल करती है, वहीं असल में शिक्षा संस्थानों में कार्य सुरक्षा और अभिव्यक्ति की आज़ादी की परिस्थितियाँ एक-दूसरे से जुड़ी हुई हैं। हमें इन दोनों लड़ाइयों को साथ लाना होगा।

फ़रवरी में ही लोकसभा में एक सवाल का जवाब देते हुए शिक्षा मंत्री ने बताया कि 23 आईआईटी में शिक्षकों के कुल मिलाकर 4,370 पद ख़ाली हैं तथा जबकि लगभग 60% शिक्षक अनुसूचित जाति, जनजाति, पिछड़ा वर्ग व आर्थिक रूप से कमज़ोर वर्ग से होने चाहिए, असल में कई संस्थानों में यह अनुपात 10% से भी कम है। मंत्रालय ने इन रिक्तियों को भरने के लिए सितंबर 2021 से सितंबर 2022 तक मिशन मोड में काम करने का जो दावा किया था, उसकी पोल भी खुल चुकी है। हाँ, एम्स संस्थानों की तरह इनका भी नाम बदलने का 'परिवर्तनकामी' ऐलान कभी भी हो सकता है!

संस्थानों, शिक्षकों व पाठ्यक्रम पर हमले

जुलाई में **असम** के मोरीगांव व बोंगईगांव में मदरसों के कुछ शिक्षकों को 'इस्लामी संगठनों' से संबंध रखने के आरोप में गिरफ़्तार कर लिया गया। इसके बाद अगस्त में इन शिक्षकों से जुड़े तीन निजी मदरसों को बुलडोज़र चला कर गिरा दिया गया। इस तरह की कार्रवाई को एकतरफ़ा व अन्यायपूर्ण बताते हुए असम के मदरसा संगठन के अलावा दलगत राजनैतिक विपक्ष ने भी इस पर अपना विरोध दर्ज किया। जनता (समुदाय) के सहयोग से बनाए गए इन संस्थानों को ऐसे तोड़ना शर्मनाक है क्योंकि महज़ गिरफ़्तारी से किसी का दोष सिद्ध नहीं होता है और न ही आरोपी की संपत्ति तोड़ना किसी न्यायिक प्रक्रिया के तहत आता है। आलोचना के जवाब में असम के सूचना व प्रसार मंत्री पीयुष हज़ारिका ने कहा कि जिहादी मदरसों के ख़िलाफ़ सरकार का अभियान जारी रहेगा। यह ग़ौरतलब है कि उत्तर-प्रदेश से लेकर मध्य-प्रदेश व दिल्ली तक में हुई ऐसी संविधान व सभ्यता विरोधी कार्रवाइयों की तरह असम में भी लोगों के बीच बुलडोज़र चलाने की

कार्रवाई का प्रचार साम्प्रदायिक आधार पर किया गया, जबकि औपचारिक कार्रवाई भूमि नियमों के उल्लंघन व 'ग़लत निर्माण' की आड़ में अंजाम दी गई। 1 अप्रैल 2021 से शुरु करके असम के 610 राजकीय मदरसों को उच्च प्राथमिक, उच्च व उच्चतर माध्यमिक स्कूलों में बदला गया था, जबकि कर्मचारियों की सेवा शर्तों व वेतन में कोई सुधार नहीं किया गया। सितंबर में पुलिस व प्रशासन द्वारा यह दावा किया गया कि गोपालपाड़ा में एक संदिग्ध मदरसे व उससे जुड़े मकान को स्थानीय लोगों ने ख़ुद ही तोड़ दिया, जबकि खोजी मीडिया की रपटों में यह बात ग़लत साबित हुई तथा प्रशासन की ही दबंगई कारस्तानी सामने आई।

उधर 10 सितंबर से **उत्तर-प्रदेश** में मदरसों का सर्वे शुरु हुआ जिसका उद्देश्य कभी राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग के आदेश का पालन करना, तो कभी इनमें सुधार लाना बताया जा रहा है। विपक्ष के विरोध जताने के अलावा, जमीयत उलेमा-ए-हिन्द ने, आज़ादी के आंदोलन में मदरसों के ऐतिहासिक योगदान की याद दिलाते हुए, इनकी हिफ़ाज़त करने का ऐलान किया। विडंबना यह है कि एक तरफ़ इस संदेहास्पद सर्वे को इन निजी मदरसों की हालत सुधारने के नाम पर जायज़ बताया जा रहा है, जबकि दूसरी तरफ़ राजकीय समर्थन से चलने वाले मदरसों की ही नहीं, बल्कि ख़ुद राजकीय स्कूलों की हालत ख़स्ता है!

15 मई को आई एक ख़बर के अनुसार **कर्नाटक** सरकार द्वारा लेखक रोहिथ चक्रातीर्थ की अध्यक्षता में गठित पाठ्यपुस्तक समीक्षा समिति ने दसवीं कक्षा की कन्नड़ की पाठ्यपुस्तक में आरएसएस के संस्थापक केशव बलिराम हेडगेवार के भाषण को पाठ के रूप में शामिल किया, जबकि जाने-माने लेखक पी लंकेश व वामपंथी विचारक जी रामकृष्ण की पूर्व-शामिल रचनाओं को हटा दिया। हटाई गई रचनाओं में भगत सिंह पर लेख शामिल था। अन्य स्थापित व जाने-माने लेखकों के पाठ भी हटाए गए और पुरातनपंथी विचारों को बढ़ावा देने वाले पाठ प्रस्तावित किए गए। समिति अध्यक्ष ने इसे बिना किसी दबाव में लिया गया फ़ैसला बताते हुए कहा कि हेडगेवार को उनके लेखन के आधार पर चुना गया था, नाकि विचारधारा या संगठन के आधार पर! कई प्रगतिशील लेखकों ने विरोध में ख़ुद ही अपनी रचनाओं को पाठ्यपुस्तकों में शामिल करने की अनुमति वापस ले ली। ऐसे में शिक्षा मंत्री को भी सफ़ाई देनी पड़ी। इसी कड़ी में कक्षा 10 की सामाजिक विज्ञान की पुस्तक में से नारायण गुरु व पेरियार पर पाठ हटा लिए गए। व्यापक विरोध के चलते एक ओर भगत सिंह पर पाठ को तो दोबारा शामिल कर लिया गया, लेकिन साथ ही भाजपा समर्थक व नरेंद्र मोदी के मुखर प्रशंसक चक्रवर्थी सुलीबेले की रचना - ताई भारतीया अमरारु पुत्राय (माँ भारती के अमर पुत्र) - को भी जोड़ लिया गया। 23 मई को शिक्षा मंत्री बी सी नागेश ने सफ़ाई दी कि भगत सिंह, पेरियार रामास्वामी, नारायण गुरु व टीपू सुल्तान पर पाठ हटाए नहीं गए हैं, बल्कि उन्हें इस तरह संशोधित किया गया है कि वो हिन्दू भावनाओं को आहत न करें! उनके अनुसार, टीपू की तारीफ़ के अंशों को हटाकर, आलोचना को शामिल किया गया है। उन्होंने यह भी कहा कि इसके पूर्व भी पाठ्यपुस्तक समीक्षा समिति ने पाठ जोड़े-घटाए थे, मगर उन पर विवाद नहीं हुआ था। इस नई समीक्षा के तहत इतिहास की पूर्व-विश्वविद्यालय की पुस्तक के अध्याय 'उभरते हुए धर्म' में भी, धार्मिक भावनाओं को आहत करने से बचाने के नाम पर, काँट-छाँट की है। मंत्री ने एक बयान में कहा कि इतिहास को बिना महिमामंडन के पढ़ाया जाएगा। 27 अगस्त को छपी एक ख़बर के अनुसार इस समिति ने उच्च विद्यालय पाठ्यचर्या में सावरकर पर एक पाठ शामिल किया है। कक्षा 8 की कन्नड़-2 पुस्तक में लेखक के टी गट्टी के यात्रा वृत्तांत को शामिल किया गया है जिसमें वो बचकाने ढंग से सावरकर की हीरोनुमा छवि पेश करते हैं। इस बार मंत्री महोदय का कहना था कि सावरकर का जितना भी महिमामंडन किया जाए, कम है! ज़ाहिर है कि बिना कपोलकल्पित वर्णन के सावरकर को पाठ्यपुस्तकों में किसी भी तरह एक आदर्श या प्रेरणास्रोत के रूप में पेश नहीं किया जा सकता है।

17 मार्च को, राज्य के शिक्षा विभाग के बजट पर चर्चा के दौरान, **गुजरात** के शिक्षा मंत्री ने विधान सभा में घोषणा की कि बच्चों में गर्व की अनुभूति व परंपरा से जुड़ाव प्रेरित करने के उद्देश्य से, छठी कक्षा से बारहवीं कक्षा तक गीता को स्कूली पाठ्यक्रम में शामिल किया जाएगा। उन्होंने दावा किया कि गीता के मूल्य, सिद्धांत व महत्व को सभी धर्मों के लोग स्वीकारते हैं। उनकी घोषणा के अनुसार शुरुआती कक्षाओं में गीता से जुड़ी कहानियाँ, श्लोक, निबंध आदि शामिल होंगे, जबकि कक्षा 9-12 में विस्तृत अध्ययन कराया जाएगा। यह हैरानी की बात नहीं है कि राज्य की प्रमुख विपक्षी पार्टी कॉग्रेस व आम आदमी पार्टी ने भी इस घोषणा का समर्थन किया। पाठ्यक्रम में गीता को इस तरह अकादमिक विषयवस्तु के बदले विशिष्ट आस्था से जोड़कर शामिल करने से न सिर्फ़ शिक्षा के स्तर में गिरावट आएगी, बल्कि जातिगत रूप से रूढ़िवादी ताक़तों को बल मिलेगा। यह एक भेदभावपूर्ण राज्य द्वारा संविधान के धर्मनिरपेक्ष मूल्य को नहीं निभाने का बेशर्म ऐलान है।

मार्च के अंत में **भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद** ने 1921 के मालाबार विद्रोह के शहीदों के नाम भारतीय स्वतंत्रता सेनानियों की सूची में से हटाने के प्रस्ताव पर अपना निर्णय टालने की घोषणा की। कथित तौर पर एक उप-समिति ने 300 से ज़्यादा ऐसे शहीदों के नाम भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष (1857-1947) के शहीदों के शब्दकोश के पाँचवें खंड से हटाने की सिफ़ारिश की थी, मगर परिषद ने इसे शोध समिति को भेजने का फ़ैसला लिया। उप-समिति ने दलील दी कि इस संघर्ष में महज़ दो ब्रिटिश व्यक्ति मारे गए थे और शहीदों पर दायर केसों में संगीन अपराधों के आरोप दर्ज थे! अगर साम्राज्यवादी ब्रिटिश हुकूमत द्वारा दायर एफ़आईआर को इस विश्वास से देखा जाएगा तो देश के इस दस्तावेज़ी इतिहास में स्वतंत्रता सेनानियों पर यक़ीनन संगीन आरोप ही लगे दिखाई देंगे। कोच्चि में कुछ लोगों ने एक मस्जिद के सामने इन शहीदों के नामों को एक फलक पर अंकित करके यह दर्शाया कि इनकी क़ुर्बानी की याद किसी अधिकृत समिति द्वारा प्रामाणिकता पाने की मोहताज नहीं है।

अप्रैल के अंत में यह बात सामने आई कि **सीबीएसई** ने कक्षा 11 व 12 की इतिहास व राजनीति विज्ञान की पुस्तकों में से गुट-निरपेक्ष आंदोलन, शीत युद्ध, अफ़्रीकी-एशियाई क्षेत्र में इस्लाम का उदय, मुग़ल साम्राज्य के अभिलेख व औद्योगिक क्रांति से जुड़े पाठ हटा दिए हैं। इसी तरह दसवीं की किताब में से 'कृषि पर भूमंडलीकरण का प्रभाव', फ़ैज़ की दो नज़्मों के अनुदित अंश तथा 'लोकतंत्र व विविधता' जैसे उप-विषय हटा दिए गए। अधिकारियों ने इन बदलावों को एनसीईआरटी की अनुशंसा पर कोर्स छोटा करने के तहत लिया गया क़दम बतलाया। पाठ्यक्रम से इन तमाम हिस्सों को हटाना विद्यार्थियों की इतिहास चेतना को कुंद व सीमित करने का उपक्रम है।

अगस्त की शुरुआत में **अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय** ने इस्लामी विचारक पेपर में से अबुल अला मौदूदी व सैयद क़ुतुब शहीद पर शामिल सामग्री हटा दी। इस निर्णय के पीछे 22 प्रोफ़ेसरान व अन्य लोगों द्वारा जुलाई 27 को प्रधान मंत्री कार्यालय में प्रेषित एक पत्र का ग़ैर-अकादमिक दबाव था जिसमें उन्होंने विश्वविद्यालय द्वारा 'जिहादी' सामग्री पढ़ाए जाने पर ऐतराज़ जताया था। विषय के जानकार विद्वानों व शिक्षकों का कहना था कि विश्वविद्यालय के एक पेपर में शामिल इन विचारकों द्वारा लिखित सामग्री में ऐसा कुछ भी नहीं था जिस पर आपत्ति की जा सके। इस तरह से मनगढ़ंत आरोप लगाकर, बिना किसी अकादमिक बहस या जाँच के, किसी पाठ्यक्रम में छेड़छाड़ करना न सिर्फ़ विश्वविद्यालय की स्वायत्तता को कमज़ोर करता है, बल्कि हुड़दंगियों को अकादमिक मामलों में हस्तक्षेप करने की ताक़त देता है।

24 मार्च को 1990 से एझावा समुदाय व मालाबार के मुसलमानों पर अध्ययन करने वाले व यूनिवर्सिटी ऑफ़ ससेक्स में पढ़ाने वाले **नृतत्वशास्त्री फ़िलीपो ऑसेला** को थिरुवनंतपुरम हवाई अड्डे पर उतरने के बाद, बिना कोई कारण बताए, केंद्र सरकार के निर्देश पर निर्वासित कर दिया गया। वो थिरुवनंतपुरम में भयंकर मौसमी घटनाओं के तहत तटीय समुदायों

द्वारा झेले जा रहे आजीविका के संकट विषय पर आयोजित एक सम्मेलन में भाग लेने आ रहे थे। उनकी अकादमिक छवि ग़ैर-विवादास्पद बताई जाती है। उन्होंने इस तरह की बंदिश पर हैरानी जताते हुए विरोध किया, मगर उन्हें दुबई की वापसी उड़ान पर बैठा दिया गया।

6 अप्रैल को अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के जवाहरलाल नेहरू मेडिकल कॉलेज व अस्पताल में फ़ोरेंसिक विज्ञान के सहायक प्रोफ़ेसर **जितेंद्र कुमार** को भारत में यौन हिंसा के इतिहास विषय पर प्रस्तुति के दौरान हिन्दू देवी-देवताओं पर कथित तौर से अभद्र टिप्पणियाँ करने के आरोप में निलंबित कर दिया गया। भाजपा की स्थानीय इकाई के भूतपूर्व प्रवक्ता निशित शर्मा की शिकायत पर थाने में प्राथमिकी दर्ज की गई। प्रोफ़ेसर जितेंद्र कुमार ने, तथ्यों पर क़ायम रहते हुए, कुलपति से बिना शर्त माफ़ी माँगते हुए अपनी ग़लती स्वीकार की। ऐसा करके उन्होंने मामले को विश्वविद्यालय के ख़िलाफ़ दुष्प्रचार व साम्प्रदायिक माहौल को बिगाड़ने से रोकने की कोशिश की, जबकि विश्वविद्यालय प्रशासन ने, इस दौर की कायराना रस्म निभाते हुए, अपने शिक्षक की अकादमिक स्वतंत्रता के बचाव में आना तो दूर, किसी औपचारिक जाँच की घोषणा करने की ज़रूरत भी महसूस नहीं की।

11 अप्रैल को श्रीनगर के कश्मीर लॉ कॉलेज के प्रिंसिपल **शेख़ शौक़त** को, तथाकथित रूप से उनकी आयु संबंधी अयोग्यता के आधार पर, पद से हटा दिया गया, जबकि हक़ीक़त में इस अन्यायपूर्ण कार्रवाई के पीछे उन्हें उनके राजनैतिक विचारों के लिए प्रताड़ित करने की मंशा बताई जा रही है। यहाँ तक कि 2016 में दिल्ली के प्रेस क्लब में आयोजित एक सम्मेलन 'आज़ादी - एक ही रास्ता' में उनकी हिस्सेदारी व नारेबाज़ी को भी एक कारण माना जा रहा है। इससे साफ़ होता है कि सुरक्षा के नाम पर फैलती जा रही नागरिक निगरानी का इस्तेमाल सभी तरह के स्वतंत्र व क्रांतिकारी विचारों को दबाने तथा बुद्धिजीवियों का दमन करने के लिए किया जा रहा है।

19 अगस्त को **11 अंतर्राष्ट्रीय विद्वानों** ने भारतीय सुप्रीम कोर्ट को पत्र लिखकर ज़किया जाफ़री मामले में सर्वोच्च न्यायालय के आदेश के फलस्वरूप होने वाले सुनियोजित घटनाक्रम का संज्ञान लेने, उसमें से अपमानजनक टिप्पणियाँ हटाने तथा सह-याचिकाकर्ता तीस्ता सीतलवाड़ व गवाह आर बी श्रीकुमार को रिहा करने की माँग की। इनमें नोआम चॉम्स्की, शेल्डन पोलॉक, मार्था नुसबॉम, अर्जुन अप्पादुरई आदि शामिल थे।

29 अगस्त को जामिया मिलिया विश्वविद्यालय ने शोधकर्ता व सामाजिक कार्यकर्ता **सफ़ूरा ज़रगर** का प्रवेश, उनके सुपरवाइज़र के तथाकथित रूप से असंतुष्ट होने के आधार पर, रद्द कर दिया। सफ़ूरा समाजशास्त्र विभाग में एम फ़िल-पीएचडी के एकीकृत कार्यक्रम में अध्ययनरत थीं। प्रशासन द्वारा जारी नोटिस में कहा गया कि सफ़ूरा ने समय से अपनी अवधि बढ़ाए जाने के लिए आवेदन नहीं किया था, जबकि सफ़ूरा के अनुसार वो पिछले कई महीनों से विश्वविद्यालय के चक्कर काट रही थीं। नोटिस में यह भी कहा गया कि उन्होंने अपनी एमफ़िल थीसिस अधिकतम मान्य समय सीमा - 5 सेमेस्टर - में जमा नहीं की थी और यह फ़ैसला शोध सलाहकार समिति की 5 जुलाई की रपट की सिफ़ारिश पर लिया गया है। सफ़ूरा ने अपने अन्यायपूर्ण कारावास, गर्भधारण का नाज़ुक अनुभव, राज्य व नफ़रती ताक़तों के हमलों का उल्लेख करते हुए कहा कि उन्हें अपने विश्वविद्यालय से ऐसे कटु व्यवहार की उम्मीद नहीं थी। जेएनयू जैसे संस्थानों में विभिन्न विद्यार्थी संगठनों ने सफ़ूरा के साथ एकजुटता दिखाते हुए विरोध प्रदर्शन आयोजित किए। इसके बाद, सितंबर के दूसरे हफ़्ते में जामिया प्रशासन ने सफ़ूरा व दो अन्य पूर्व-विद्यार्थियों का परिसर में प्रवेश ही वर्जित कर दिया। इसके पीछे उनके द्वारा 'भोले-भाले विद्यार्थियों' को उकसाने, राजनीति करने व ग़ैर-अकादमिक गतिविधियों में भाग लेने जैसे जो कारण गिनाए गए वो न सिर्फ़ विश्वविद्यालय द्वारा सफ़ूरा को कोर्स से बेदख़ल करने के तथाकथित कारणों को झूठा साबित करते हैं, बल्कि इस पूरी कार्रवाई के पीछे के विद्वेष को सामने लाते हैं। आज फ़ासीवादी सत्ता द्वारा विश्वविद्यालयों को,

जिन्हें कि असीम स्वतंत्रता व उदारता की भूमि होना था, प्रतिरोध को कुचलने व दमन के माध्यम के रूप में इस क़दर इस्तेमाल किया जा रहा है जितना कि आज़ाद भारत में पहले कभी नहीं हुआ।

18 मई को यू ट्यूब पर अम्बेडकरनामा चैनल चलाने वाले व दिल्ली विश्वविद्यालय के हिन्दू कॉलेज में इतिहास पढ़ाने वाले **प्रोफ़ेसर रतन लाल** के ख़िलाफ़ ज्ञानवापी मस्जिद में तथाकथित शिवलिंग पाए जाने पर एक कटाक्षपूर्ण फ़ेसबुक टिप्पणी करने के लिए प्राथमिकी दर्ज की गई। उन्हें इस पोस्ट को लेकर जानलेवा धमकियाँ भी मिलीं। उन्होंने कहा कि ज्ञानवापी मस्जिद जैसे इतिहास के विषय में धार्मिक व्यक्तियों से ज़्यादा समझदारीपूर्ण पक्ष इतिहासकार ही रख सकते हैं। उन्हें 20 मई को हिरासत में ले लिया गया। 21 मई को दिल्ली की एक स्थानीय अदालत ने यह कहते हुए उन्हें ज़मानत दे दी कि हालाँकि उनकी टिप्पणी ग़ैर-ज़रूरी व निंदनीय थी, मगर इससे समुदायों के बीच नफ़रत फैलने के संकेत नहीं मिलते हैं। पुलिस ने उनकी ज़मानत की अर्ज़ी का विरोध किया, हालाँकि हिरासत की माँग नहीं की। अदालत ने उन्हें इस विषय पर टिप्पणी करने से रोककर इस गंभीर मुद्दे पर सार्वजनिक बहस को एक आलोचनात्मक स्वर से महरूम कर दिया। निःसंदेह ऐसी क़ानूनी कार्रवाइयाँ विवेक की आवाज़ को चुप कराने के लिए इस्तेमाल में लाई जा रही हैं।

शिक्षा का सैन्यीकरण

भगत सिंह, राजगुरु व सुखदेव के शहीदी दिवस की पूर्व संध्या पर दिल्ली सरकार ने झड़ौदा कलां में 14 एकड़ की ज़मीन पर भगत सिंह के नाम पर सशस्त्र बलों में जाने को तैयार करने के उद्देश्य से एक स्कूल खोलने की घोषणा की। इस बाबत मंत्रिमंडल ने दिसंबर 2021 में फ़ैसला लिया था। घोषणा में बताया गया कि इस स्कूल में सेवानिवृत्त फ़ौजी ट्रेनिंग प्रदान करेंगे। साथ ही, नौवीं व ग्यारहवीं कक्षा की 100-100 सीटों के लिए 18,000 आवेदन प्राप्त होने का दावा किया गया। इस स्कूल का उद्घाटन अंततः 27 अगस्त को हुआ। इसे दिल्ली सरकार के विशिष्ट स्कूलों की ताज़ातरीन श्रेणी, स्पेशलाइज़्ड ऐक्सेलेंस, के हिस्से के रूप में पेश किया गया है। इस स्कूल में मुफ़्त छात्रावास की सुविधा दी जाएगी और इसे दिल्ली बोर्ड ऑफ़ सेकेंडरी एजुकेशन से संबद्ध किया जाएगा, नाकि सीबीएसई से। इसमें एनडीए जैसी परीक्षाओं के लिए चार साल की मुफ़्त कोचिंग भी प्रदान की जाएगी। दिल्ली में कोई सैनिक स्कूल न होने को भी इसकी स्थापना के औचित्य के रूप में पेश किया गया। सरकार ने दावा किया कि इसके प्रथम बैच के 80-90% विद्यार्थी सरकारी स्कूलों से आए हैं। हालाँकि, 200 सीटें उपलब्ध होने के संदर्भ में प्रथम बैच में 175 विद्यार्थियों का ही होना सवाल खड़े करता है। आमजन के लिए नए स्कूल खोलने में नाकाम रही सरकार को अपने स्कूलों में उनकी क्षमता से कहीं ऊपर हज़ारों की तादाद में पढ़ रहे विद्यार्थी, उनकी शिक्षा के लिए अति-प्रतिकूल परिस्थितियाँ - जहाँ कुछ स्कूलों में विद्यार्थियों को एक-एक दिन के अंतराल पर और कहीं दो-दो घंटे के लिए बुलाया जा रहा है - नज़र नहीं आती हैं और न ही स्कूलों में प्रवेश प्राप्त नहीं कर पा रहे हज़ारों बच्चे दिखाई देते हैं; हाँ, बजट का बड़ा हिस्सा चंद विशिष्ट, बहिष्करणवादी स्कूलों को खड़ा करने व उन्हें चमकाकर सरकार का प्रचार करने के लिए ज़रूर लुटाया जा है। इस 'राष्ट्रवादी' फ़ैसले को दिल्ली सरकार द्वारा शहरभर में 500 तिरंगों पर 100 करोड़ ख़र्च करने और स्कूलों में देशभक्ति नाम से एक बहु-प्रचारित कोर्स शामिल करने से जोड़कर भी देखने की ज़रूरत है। ज़ाहिर है कि यह भाजपा व केंद्र सरकार के अजेंडा पर साथ आकर, चुनावी प्रतियोगिता के आलोक में लिया गया फ़ैसला है। भगत सिंह जैसे क्रांतिकारी के नाम पर शिक्षा के सैन्यीकरण का जश्न मनाना सरकार का उनके विचारों से अलगाव भी दिखाता है और यह भी कि भारत की मुख्यधारा की राजनैतिक पार्टियाँ गाँधी व डॉक्टर अंबेडकर की तरह भगत सिंह को भी महज़ सस्ती लफ़्फ़ाज़ी के लिए इस्तेमाल करती हैं।

12 अगस्त को, स्कूली बच्चों के बीच आयोजित की गई 'वीर गाथा' प्रतियोगिता के पुरस्कार वितरण समारोह में बोलते हुए, केंद्रीय शिक्षा मंत्री धर्मेंद्र प्रधान ने कहा कि विद्यार्थियों को छोटी उम्र से ही देशभक्त बनाने के लिए आज़ादी के 75 साल के दौरान हुए युद्धों में सेना की बहादुरी व बलिदान के उदाहरण वेबसाइट पर डाले जाएँगे, और फिर शीघ्र ही कोर्स का हिस्सा बनेंगे। उन्होंने राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के तहत इस तरह का नया पाठ्यक्रम तैयार करने हेतु रक्षा मंत्री को शिक्षा

मंत्रालय का मार्गदर्शन करने के लिए कहा। उन्होंने ऐलान किया कि 'वीर गाथा' प्रतियोगिता को नियमित किया जाएगा व इसके लिए अंक प्रदान करने की व्यवस्था की जाएगी। ऐसा नहीं है कि पाठ्यक्रम में साहस और बलिदान के उदात्त मूल्यों को प्रेरित करती सामग्री पहले शामिल नहीं थी। भाषा व साहित्य में इस तरह के पाठ हमेशा से पढ़ाए जाते रहे हैं। लेकिन वर्तमान सरकार का उद्देश्य देश की 'आज़ादी' व 'सेना के बलिदान' के नाम पर शिक्षा को संकुचित करना, बच्चों के मन में विचारहीनता, वैमनस्य की भावना भरना और ख़ुद सैन्य संस्था का अनुचित राजनैतिकरण करना है। विडंबना यह है कि इस सरकार की राजनैतिक विरासत का इन संघर्षों व बलिदानों से, नफ़रती माहौल बनाने व चुनावी इस्तेमाल करने के अलावा कोई रिश्ता नहीं रहा है।

केंद्रीय विश्वविद्यालय

जनवरी के अंत में **दिल्ली विश्वविद्यालय** के हंसराज कॉलेज में महिलाओं के लिए छात्रावास बनाने की जगह गौशाला बनाने का विरोध किया गया। इस विरोध को एसएफ़आई ने आयोजित किया था। प्रशासन ने इसे शोध के नाम पर एक गाय पालने की योजना बताते हुए सफ़ाई दी कि यह हॉस्टल की जगह नहीं थी। एक साज़िश की तरह, कॉलेज प्रशासन द्वारा यह शिक्षा व छात्र विरोधी क़दम तब उठाया गया जब कैंपस बंद था। एक तरफ़ दिल्ली विश्वविद्यालय में बाहर से आने वाले विद्यार्थियों के लिए छात्रावास का गंभीर संकट है, जिसके चलते हज़ारों विद्यार्थी महँगे कमरों में किराए पर रहने को मजबूर हैं, दूसरी तरफ़ प्रशासन ऐसी दक़ियानूसी व फ़ुज़ूल की योजनाएँ लाकर विश्वविद्यालय के अकादमिक चरित्र को बिगाड़ने पर तुला हुआ है।

2 फ़रवरी को दिल्ली यूनिवर्सिटी टीचर्स असोसिएशन (डूटा) ने कुलपति को पत्र लिखते हुए विश्वविद्यालय द्वारा जारी प्रस्तावित स्नातक स्तर की पाठ्यचर्या के ढाँचे को ख़ारिज किया। शिक्षक संघ ने आरोप लगाया कि घोषित ढाँचा अकादमिक व कार्यकारी समितियों में पारित विषयवस्तु से अलग है तथा तीन साल की डिग्री में क्रेडिट कम होने पर न सिर्फ़ शिक्षा का स्तर गिरेगा बल्कि शिक्षकों के पदों में कमी आएगी। डूटा ने तीन साल के ऑनर्स कार्यक्रम को जारी रखने की माँग के साथ डिग्री के लिए अनिवार्य ऑनलाइन कोर्स का विरोध किया। डूटा ने आरोप लगाया कि पिछले दशक में सुधार के नाम पर पाठ्यक्रम में हद से ज़्यादा बदलाव करने से तदर्थवाद व अस्थिरता पैदा हुई है तथा शिक्षा छितली हुई है।

विश्वविद्यालय को पूरी तरह खोलने की माँग को लेकर वाम व प्रगतिशील विद्यार्थी संगठनों ने 8 फ़रवरी को कुलपति दफ़्तर के सामने, छात्रा मार्ग को जाम करते हुए, संयुक्त विरोध प्रदर्शन किया। विद्यार्थियों ने आरोप लगाया कि सुरक्षाकर्मियों द्वारा मार-पीट की गई तथा पुलिसकर्मियों द्वारा छात्राओं को हिंसा का निशाना बनाया गया।

अंततः 9 फ़रवरी को एक घोषणा करके 19 मार्च 2020 से बंद विश्वविद्यालय में 17 फ़रवरी 2022 से कक्षाएँ फिर से शुरु करने का निर्णय सार्वजनिक किया गया। इस फ़ैसले को इतना टालना इसलिए भी प्रशासन की प्रताड़ना थी क्योंकि दिल्ली आपदा प्रबंधन प्राधिकरण ने उच्च शिक्षा संस्थानों को खोलने की इजाज़त पहले-ही दे दी थी। विश्वविद्यालय प्रशासन ने घटिया दर्जे की राजनीति व चाटुकारिता दिखाते हुए अपनी घोषणा में अभाविप के दो दिन के दिखावटी विरोध को संज्ञान में लिया, जबकि संयुक्त मोर्चे के तहत विभिन्न छात्र संगठन सशरीर कक्षाओं की माँग के साथ लंबे अर्से से जुझारू संघर्ष कर रहे थे। इस संघर्ष में ऑनलाइन कक्षाओं का बहिष्कार, कुलपति दफ़्तर के सामने प्रदर्शन, सड़कें जाम करना, सड़कों पर कक्षाएँ आयोजित करना आदि शामिल था, जिनका मक़सद ऑनलाइन पढ़ाई की समस्याओं तथा उसमें निहित बहिष्करण व असमानता की खाई को रेखांकित करना था। विश्वविद्यालय प्रशासन ने, जैसे कि आंदोलन की सफलता के बदले के रूप में, इसी दिन, 11 असहमतियों के साथ, अकादमिक परिषद में स्नातक स्तर की पाठ्यचर्या की रूपरेखा पारित की।

25 अप्रैल को विद्यार्थियों ने प्रॉक्टर रजनी अब्बी द्वारा जारी उस नोटिस पर विरोध दर्ज किया जिसमें कहा गया था कि किसी भी विरोध प्रदर्शन को आयोजित करने के लिए विद्यार्थियों को उनकी अनुमति लेनी होगी। एक साझा पत्र में

विभिन्न विद्यार्थी संगठनों ने इस फ़रमान को यह कहते हुए ख़ारिज कर दिया कि वो इसे एक डराने-धमकाने वाली कार्रवाई मानते हैं तथा इसे मानने से इंकार करते हैं। विद्यार्थियों ने डीन स्टूडेंट्स वेलफ़ेयर को इस नोटिस के प्रति अपना विरोधपूर्ण ज्ञापन सौंपा।

17 मई को शिक्षकों व विद्यार्थियों ने हंसराज कॉलेज के सामने कॉलेज प्रशासन द्वारा एक निजी कोचिंग संस्थान के साथ किए गए क़रार के विरुद्ध विरोध प्रदर्शन किया। इस क़रार के तहत उक्त संस्थान द्वारा कॉलेज में प्रशासनिक सेवाओं की परीक्षा की तैयारी के लिए कोचिंग देने का प्रावधान था। इस कोचिंग की फ़ीस विद्यार्थियों के बारहवीं कक्षा के अंकों के आधार पर, न्यूनतम 75,000 से लेकर 1,50,000 रुपये तक है। इस प्रायोजित घुसपैठ का प्रचार बाक़ायदा कॉलेज की वेबसाइट पर किया गया, जोकि शिक्षा तथा सार्वजनिक शिक्षा संस्थानों के चरित्र पर हमले का एक बेशर्म ऐलान है। डीटीएफ़ ने कुलपति को पत्र लिखकर विरोध जताया व आइसा ने इसे तत्काल बंद करने की माँग की।

1 अगस्त को विश्वविद्यालय के विभिन्न परिषदों के सदस्यों ने माँग की कि तैयारी की गंभीर कमी को देखते हुए और विद्यार्थियों को पहले सेमेस्टर के कोर्स तक की सूचना उपलब्ध न होने के मद्देनज़र एफवाईयूपी को कम-से-कम एक साल के लिए टाला जाए।

बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के कुलपति रघुवीर के जैन के एक कॉलेज (महिला महाविद्यालय) में इफ़्तार दावत में शामिल होने को तुष्टिकरण बताते हुए, कुछ दक्षिणपंथी तत्वों ने 28 अप्रैल को विरोध किया, जबकि प्रशासन ने इसका बचाव करते हुए इसे एक पुरानी परंपरा बताया। प्रशासन ने याद दिलाया कि विश्वविद्यालय में इफ़्तार आयोजित करने व इसमें कुलपति के भाग लेने की परंपरा दशकों पुरानी है तथा बीएचयू में विदेशों से भी विद्यार्थी पढ़ने आते हैं, जिसके चलते इसका अपना विविध व समावेशी चरित्र है जिसके तहत सब सदस्य आपसी मेल से रहते हैं। ग़ौरतलब है कि विश्वविद्यालय प्रशासन ने न सिर्फ़ वैमनस्य फैलाने वाले इन तत्वों के ख़िलाफ़ कोई कार्रवाई नहीं की, बल्कि अपने बचाव में देश की विविधता के बदले विदेशी छात्रों के संदर्भ में जनित विविधता का हवाला दिया! यह प्रसंग यह भी दिखाता है कि सत्तासीन नेतृत्व भी साम्प्रदायिक ताक़तों की आपराधिकता को निरंकुश बढ़ावा देने के अंजाम के प्रति आश्वस्त नहीं हो सकता है।

फ़रवरी-मार्च में **विश्व-भारती विश्वविद्यालय** के विद्यार्थियों ने हॉस्टल खोले बग़ैर ऑफ़लाइन परीक्षाएँ आयोजित करने का विरोध करते हुए 11 मार्च से शुरु होने वाली परीक्षाओं का बहिष्कार करने का फ़ैसला लिया। दो विभागों के अध्यक्षों - मुक्तेश्वर नाथ तिवारी (भाषा भवन) व स्वप्न कुमार घोष (संगीत भवन) - ने विश्वविद्यालय की कार्यकारी परिषद से इस्तीफ़ा देकर विद्यार्थियों के साथ एकजुटता दिखाई। हालाँकि, मक्कारी का परिचय देते हुए, विश्वविद्यालय ने उन्हें विभागाध्यक्ष पद से हटा दिया जिससे कि वो कार्यकारी परिषद से बाहर कर दिए गए।इसके अलावा, कार्यकारी जन सम्पर्क अधिकारी अतिग घोष व विद्या भवन के संदीप सर्बाधिकारी ने भी इस्तीफ़ा देकर विद्यार्थियों की माँग का समर्थन किया।

26 मार्च को प्रशासन ने ऑनलाइन परीक्षा के फ़ैसले की घोषणा की, जिसके बाद विद्यार्थियों ने विजय मार्च निकाले। परीक्षा के बहिष्कार का ऐलान करके फ़ॉर्म नहीं भरने वाले विद्यार्थियों को भी, तकनीकी आधार पर 'छूट' देते हुए, दुबारा फ़ॉर्म भरने की इजाज़त दी गई, हालाँकि ऐसे में उनका विरोध औपचारिक रूप से दर्ज नहीं किया गया।

5 अगस्त को विश्वविद्यालय में, केंद्रीय विश्वविद्यालयों के चार कुलपतियों की भागीदारी में, नरेंद्र मोदी पर चाटुकारिता से भरी एक पुस्तक की समीक्षा चर्चा आयोजित की गई। इसकी अध्यक्षता कुलपति बिद्युत चक्रबर्ती ने की। उनके अलावा तेज़पुर विश्वविद्यालय के विनोद कुमार जैन, गुजरात केंद्रीय विश्वविद्यालय के रामाशंकर दूबे व केंद्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय के श्रीनिवास बाराखेड़ी ने भी सम्मेलन को संबोधित किया। विश्वविद्यालय की गरिमा व अपने पद की भूमिका को ताक़ पर रखते हुए इन सभी वक्ताओं ने निर्लज्जता का परिचय दिया तथा चाटुकारिता के पुल बाँधने में कोई कसर बाक़ी नहीं रखी।

फ़रवरी की शुरुआत में **जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय** की नव-नियुक्त कुलपति सांतिश्री धूलिपुड़ी पंडित के नाम के ट्विटर अकाउंट से कुछ पुरानी ट्वीट सामने आईं जिनमें साम्प्रदायिक, छात्र व किसान विरोधी तथा जेएनयू के एक वर्ग को नक्सली आदि विशेषणों से संबोधित किया गया था। इन ट्वीट के बारे में पूछे जाने पर उन्होंने इस अकाउंट से ही पल्ला झाड़ लिया। यह पहली दफ़ा नहीं हुआ कि अकादमिक जगत में शीर्ष ज़िम्मेदारी के पद पाने वाले व्यक्तियों के नफ़रती विचार उनकी प्रोन्नति में आड़े न आए हों। बल्कि, संभावना तो यही है कि वर्तमान सत्ता ने ऐसे नफ़रती विचारों को ही उनकी योग्यता का सबसे बेहतर सबूत मानकर उन्हें नवाज़ा हो।

11 अप्रैल को जेएनयू के कावेरी हॉस्टल में रामनवमी के अवसर पर अभाविप से जुड़े छात्रों ने माँसाहार का विरोध करते हुए अन्य छात्रों पर हिंसक हमला किया। जबकि अभाविप ने बहाना बनाया कि हॉस्टल के बाहर उनके द्वारा आयोजित एक धार्मिक कार्यक्रम (हवन) पर आपत्ति करते हुए अवरोध डाला गया, वाम छात्र संगठनों ने आरोप लगाया कि अभाविप ने हॉस्टल में माँसाहार परोसे जाने पर धमकी दी व हमला किया। दोनों पक्षों की तरफ़ से प्राथमिकी दर्ज की गई और 30 से अधिक विद्यार्थियों के घायल होने की बात सामने आई, हालाँकि पुलिस ने केवल छः की संख्या बताई। मेस सचिव राग़िब ने अभाविप के इस दावे को झूठा बताया जिसमें उन्होंने जीबीएम में रामनवमी के अवसर पर माँसाहार हटाने पर सहमति बनने की बात की थी। उन्होंने कहा कि माँसाहार को लेकर मेस वार्डन ने उन्हें केवल संकेत दिया था, लेकिन लिखित में कोई आदेश नहीं दिया था। उनके अनुसार अभाविप ने मीट सप्लाई करने वाले व्यक्ति पर हमला किया था और मेस में आने से रोका जिससे कि उस दिन 300 में से 170 विद्यार्थियों का खाना कम पड़ गया। जब विद्यार्थी वार्डन से शिकायत करने गए, तो अभाविप से जुड़े छात्रों ने उनपर हमला किया। मीडिया में किए गए दुष्प्रचार के उलट, हक़ीक़त यह है कि वाम छात्र संगठनों या अन्य किसी के भी द्वारा अभाविप द्वारा आयोजित धार्मिक कार्यक्रम को अवरुद्ध नहीं किया गया। वैसे, ज़मीन पर माँसाहार का जबरन विरोध करने वाले अभाविप को, विश्वविद्यालय के राजनैतिक चरित्र व विद्यार्थियों की विविध पृष्ठभूमियों का न्यूनतम आवश्यक संज्ञान लेते हुए, अपने बयानों में यह कहने को मजबूर होना पड़ा कि वो इसका विरोध नहीं करते हैं! हालाँकि, सवाल इस पर भी उठना चाहिए कि जब हिजाब पहनने मात्र को शिक्षा संस्थानों में प्रतिबंधित करने को सही ठहराया जा सकता है, तो हवन जैसे अनुष्ठानों को उचित कैसे माना जा सकता है। और यहाँ तो इस अनुष्ठान की इजाज़त भी नहीं ली गई थी। वाम छात्र संगठनों ने पुलिस के मूक बने रहने व पक्षपातपूर्ण रवैये के ख़िलाफ़ पुलिस मुख्यालय पर प्रदर्शन किया। 12 अप्रैल को जेएनयूएसयू ने हिंसा की स्वतंत्र न्यायिक जाँच की माँग की, मगर उन्हें कुलपति से मिलने नहीं दिया गया। जेएनयूएसयू ने प्रशासन की एकतरफ़ा विज्ञप्ति को झूठा बताया जिसमें हवन पर ऐतराज़ का उल्लेख किया गया था। जेएनयूटीए ने भी विज्ञप्ति को सांप्रदायिक कहते हुए अपनी हैरानी जताई। 13 अप्रैल को विश्वविद्यालय प्रशासन ने, घटना के दो विरोधी दावों को आधार बनाते हुए, प्रॉक्टोरियल जाँच के आदेश दिए। (इस तथाकथित जाँच की रपट आज तक नहीं आई है!) इसकी प्रतिक्रिया में कावेरी हॉस्टल व मेस समिति ने बयान जारी किया तथा इस हिंसा के मूल में विविध भोजन के हक़ पर हमले को दोष देते हुए अभाविप की कहानी को झुठलाया।

10 अगस्त को जेएनयूटीए ने एनटीए की सीयूईटी प्रवेश परीक्षा को हटाकर जेएनयू की अपनी प्रवेश प्रक्रिया को वापस लाने की माँग की। प्रवेश प्रक्रिया तथा इसके चलते अकादमिक सत्र शुरु होने में हो रहे अत्याधिक विलंब के अलावा केंद्रीकृत परीक्षा अपनाने से इसकी गहराई व प्रामाणिकता से भी समझौता हुआ है। शिक्षक संघ ने प्रवेश परीक्षा, यौन उत्पीड़न के ख़िलाफ़ विद्यार्थियों की पहल पर गठित समिति व उसकी प्रक्रिया तथा विद्यार्थी संघ के चुनावों पर हुए प्रशासनिक हमलों को विश्वविद्यालय के विशिष्ट लोकतांत्रिक चरित्र पर हमला बताया।

जेंडर, पहनावा और हिंसा

हिजाब के बहाने साम्प्रदायिक नफ़रत, विविधता पर आघात व शिक्षा से बेदख़ली

फ़रवरी की शुरुआत में कर्नाटक के तटीय ज़िले उडुपी के एक राजकीय पूर्व-स्नातक कॉलेज में दक्षिणपंथी छात्र गुटों ने कुछ मुस्लिम छात्राओं के हिजाब पहनकर आने पर आक्रामक व नफ़रती विरोध ज़ाहिर किया। इस विरोध के तहत वो छात्र भगवा गमछे पहनकर आने लगे तथा हिंसक नारेबाज़ी करने लगे। कॉलेज प्रिंसिपल ने हिजाब व भगवा गमछे, दोनों पर रोक लगा दी, जबकि ग़ौरतलब है कि हिजाब पहनने वाली छात्राएँ हंगामा नहीं कर रही थीं और भगवा गमछे पहनने वाले छात्रों की तरह किसी धमकी के तहत हिजाब नहीं पहन रही थीं, बल्कि पहले-से ही ऐसा करती आ रही थीं। हालाँकि उडुपी के कॉलेजों में यह नफ़रती माहौल दिसंबर 2021 से ही सुलग रहा था, इस बार हिजाब पहनने वाली छात्राओं के विरुद्ध यह हिंसक विरोध राज्य के अन्य ज़िलों में पहुँचा दिया गया। 5 फ़रवरी को राज्य सरकार ने एक पक्षपाती आदेश निकालकर पूर्व-विश्वविद्यालययी कॉलेजों में ड्रेस कोड अनिवार्य कर दिया। इससे उपजे तनाव व परस्पर विरोध की परिस्थितियों में कुछ कॉलेजों ने कक्षाएँ स्थगित कर दीं तथा कुछ ने हिजाब पहनी छात्राओं को गेट से लौटा दिया। चिकमगलूर में दलित छात्र संगठनों से जुड़े विद्यार्थियों ने नीले गमछे पहनकर व जय भीम के नारे लगाकर हिजाब पहनने वाली छात्राओं का समर्थन किया। राज्य में फैल रहे विरोध-प्रदर्शन, जवाबी मार्चों, तनाव व हिंसा के माहौल के संदर्भ में और अदालत के फ़ैसले के इंतज़ार के नाम पर 8 फ़रवरी को राज्यभर के कॉलेजों को तीन दिनों के लिए बंद कर दिया गया। 10 फ़रवरी को सुप्रीम कोर्ट ने मामले को उच्च-न्यायालय से सर्वोच्च न्यायालय को भेजने की अर्ज़ी यह कहते हुए नामंज़ूर कर दी कि ऐसा करना जल्दबाज़ी होगी। ज़ाहिर है कि प्रभावित छात्राओं की शिक्षा न्यायालय के लिए कोई ज़रूरी मुद्दा नहीं था। कर्नाटक उच्च-न्यायालय ने इसी दिन, यह कहते हुए कि वो अंतरिम आदेश जारी करेगा, विद्यार्थियों से कहा कि वो हिजाब या भगवा गमछा पहनकर कॉलेज न आएँ। न्यायालय ने साथ ही यह भी कहा कि कॉलेज खोले जाएँ व छात्र-छात्राएँ उनमें लौटें। इस तरह से अदालत ने न सिर्फ़ दक्षिणपंथी तत्वों की अनुचित माँग को स्वीकार कर लिया, बल्कि बिना उनकी बात सुने व न्यायिक प्रक्रिया अपनाने के छद्म के बग़ैर ही हिजाब पहनने वाली छात्राओं का कॉलेज प्रवेश प्रतिबंधित कर दिया। हालाँकि यह आदेश उन कॉलेजों पर लागू नहीं होना चाहिए था जहाँ पर कॉलेज समिति ने कोई प्रत्यक्ष कोड निर्धारित नहीं किया था, मगर प्रशासन के रवैये के चलते ऐसे कॉलेजों की हिजाब पहनने वाली छात्राएँ भी शिक्षा से वंचित कर दी गईं। अदालत के आदेश के बाद मुख्यमंत्री ने 14 फ़रवरी से स्कूल व 16 फ़रवरी से कॉलेज खोलने के घोषणा की। इस बीच बीदर के एक नर्सिंग कॉलेज में हिजाब पहने हुई छात्राओं को परीक्षा देने से रोका गया, जिस पर 6 छात्राओं ने स्कार्फ़ उतारा जबकि 5 ने इंकार कर दिया। कॉलेज प्रशासन ने इस घटना का खंडन किया। उडुपी में एक याचिकाकर्ता के पिता के होटल पर पत्थर फेंके गए, शीशे तोड़े गए व उसके भाई को थप्पड़ मारे गए। इस हिंसक हमले में शामिल रहे तीन लोगों को गिरफ़्तार किया गया मगर उसी दिन ज़मानत पर रिहा भी कर दिया गया। उधर 22 फ़रवरी को कन्नड़ अभिनेता चेतन कुमार को उच्च-न्यायालय में मामले को सुन रही पीठ के एक न्यायाधीश कृष्णा दीक्षित द्वारा एक पुराने केस में महिला-विरोधी बयान व फ़ैसले देने के संदर्भ में हिजाब मामले में उनकी निष्पक्षता से सुनवाई करने की क्षमता पर प्रश्न उठाने वाली एक ट्वीट के लिए गिरफ़्तार कर लिया गया तथा 3 दिनों बाद ज़मानत पर छोड़ा गया। 23 फ़रवरी को उच्च-न्यायालय ने साफ़ किया कि उसका आदेश केवल ऐसे पूर्व-स्नातक व डिग्री कॉलेजों पर लागू है जहाँ वर्दी का कोई कोड अस्तित्व में है। जबकि इसकी आड़ में अन्य कॉलेजों ने भी अचानक ड्रेस कोड लागू करके हिजाब पहनने वाली छात्राओं की शिक्षा को बाधित किया। अदालत में सरकारी पक्ष ने हिजाब के समर्थन में आगे आए एक छात्र संगठन पर उडुपी के एक कॉलेज के शिक्षकों को डराने-धमकाने के आरोप लगाए लेकिन इसके समर्थन में कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किए। इस दौरान बंगलुरु में एक अमृतधारी सिख छात्रा को कॉलेज में प्रवेश के पहले पगड़ी उतारने को कहा गया। सिख गुरुद्वारा प्रबंधक कमिटी ने इस पर सख़्त ऐतराज़ जताते हुए प्रशासन को सिखों की धार्मिक आज़ादी व पहचान में हस्तक्षेप न करने की

चेतावनी दी। दो कॉलेजों की नौ छात्राओं द्वारा दायर दो याचिकाओं पर सुनवाई करते हुए, तेईस घंटे चली जिरह के बाद, 25 फ़रवरी को उच्च-न्यायालय ने अपना आदेश सुरक्षित रखा। 28 फ़रवरी को उडुपी के राजकीय पूर्व-स्नातक महिला कॉलेज में विज्ञान की प्रयोग की परीक्षा में कॉलेज की 3 याचिकाकर्ता छात्राओं को बैठने नहीं दिया गया, जबकि उन्होंने प्रशासन से अपनी परीक्षा टालने की अपील की थी। मंगलुरु के एक राजकीय कॉलेज में हिजाब पहनने वाली छात्राओं की इस अपील के बाद कि उन्हें 3 मार्च से शुरु होने वाली आंतरिक परीक्षाओं में भाग लेने की इजाज़त दी जाए, पहले तो ऐसी कुछ छात्राओं को पुस्तकालय व कक्षा में प्रवेश दिया गया, मगर फिर कुछ छात्रों के भगवा गमछे पहनने की तथाकथित धमकी पर कॉलेज की छुट्टी घोषित की गई व उक्त छात्राओं का प्रवेश वर्जित कर दिया गया। एक छात्रा ने पुलिस में 4 लड़कों व 15 अन्य लोगों के ख़िलाफ़, उन्हें अभाविप के सदस्य बताते हुए, अभद्र भाषा इस्तेमाल करने व हिंसक व्यवहार करने की शिकायत दर्ज की। 15 मार्च को उच्च-न्यायालय ने, यह कहते हुए कि यह धर्म का अभिन्न अंग नहीं है, हिजाब पर रोक को उचित ठहराया। न्यायालय ने 5 फ़रवरी को प्रशासन द्वारा कर्नाटक शिक्षा अधिनियम 1983 के तहत लिए गए वर्दी संबंधी आदेश को भी सही ठहराया। याचिकाकर्ता छात्राओं ने उसी दिन एक प्रेस सम्मेलन को संबोधित करते हुए अपना दुःख व असंतोष ज़ाहिर किया तथा सर्वोच्च न्यायालय में अपील दायर करके संघर्ष जारी रखने की घोषणा की। इसके बाद इन छात्राओं ने कक्षाओं का बहिष्कार किया, वहीं अन्य जगहों पर छात्राओं को परीक्षा देने से रोक दिया गया या उन्हें हिजाब उतारकर परीक्षा देनी पड़ी। मार्च के अंत में महाराष्ट्र के पालघर ज़िले में वीरार के वीवा कॉलेज ऑफ़ लॉ में हिजाब पहनने वाली प्रिंसिपल ने प्रशासन पर इस कारण से उत्पीड़न करने का इल्ज़ाम लगाते हुए पद से इस्तीफ़ा दे दिया। 26 मार्च को कर्नाटक के प्राथमिक व उच्च माध्यमिक शिक्षा विभाग ने एसएसएलसी की परीक्षाओं में बैठने के लिए भी वर्दी अनिवार्य करने के आदेश जारी किए। बागलकोट ज़िले के इलकल में हिजाब पहनी एक छात्रा को परीक्षा केंद्र से वापस लौटाया गया। बेलगावी जैसी अन्य जगहों पर छात्राओं ने बुर्क़ा उतारकर परीक्षा दी। गडग ज़िले के सी एस पाटिल उच्च माध्यमिक स्कूल के 7 शिक्षकों को कुछ छात्राओं को हिजाब पहनकर परीक्षा देने की इजाज़त देने के आरोप में निलंबित कर दिया गया। 22 अप्रैल को उडुपी के राजकीय महिला पूर्व स्नातक कॉलेज की याचिकाकर्ताओं को द्वितीय वर्ष की बिज़नेस स्टडीज़ पेपर की परीक्षा छोड़नी पड़ी। उडुपी के विधायक के रघुनाथ ने मुख्यमंत्री व शिक्षा मंत्री से इन छात्राओं के ख़िलाफ़ केस दर्ज करने को कहा। हालाँकि कई परीक्षा केंद्रों पर हिजाब उतारने व कपड़े बदलने के लिए अलग से कमरे की व्यवस्था भी की गई। अगले दिन इसी कॉलेज के विज्ञान विभाग की तीन अन्य याचिकाकर्ताओं की गणित की परीक्षा छूट गई। 13 जुलाई को जाकर, जब तक कई छात्राओं का अकादमिक वर्ष छूट चुका था और हिंदुत्ववादी ताक़तों की नफ़रती माँग को 'जीत' की खाद मिल चुकी थी, सर्वोच्च न्यायालय ने संकेत दिया कि वो इस मसले पर सुनवाई शुरु कर सकता है। इतनी देर तब हुई जब मार्च-अप्रैल में केस को जल्दी सूचीबद्ध करने की अपील की गई थी और अदालत ने इस बाबत आश्वासन भी दिया था। आख़िरकार सितंबर में सुनवाई शुरु हुई है और अदालत के प्रारंभिक संकेत - जैसे, याचिकाकर्ताओं के वकील से यह बेहूदा व शरारती सवाल पूछना कि क्या अपनी पसंद से वस्त्र पहनने के हक़ में निर्वस्त्र होने का हक़ भी शामिल है या क्या सभी धर्म एक ही ईश्वर को मानते हैं - न्याय की आस नहीं जगाते हैं। याचिकाकर्ताओं की ओर से जो मौलिक प्रश्न खड़े किए गए हैं, उनमें से कुछ इस प्रकार हैं - वस्त्र धारण करने का हक़ निजता व अंतःकरण की आज़ादी का हिस्सा है; स्कूली वर्दी न पहनने पर भी क़ानून शिक्षा से वंचित करने की सज़ा की इजाज़त नहीं देता है; शिक्षा के अनुशासन को फ़ौजी अनुशासन की तर्ज पर नहीं आँका जा सकता है; विद्यार्थी व कर्मचारी के हक़ों-दायित्वों में मौलिक फ़र्क़ है; इस तरह की कोई रोक केवल तीन आधारों पर लगाई जा सकती है - सार्वजनिक व्यवस्था, नैतिकता व स्वास्थ्य - और तीनों ही इस मुद्दे में नदारद हैं; ऐसी रोक अनुच्छेद 19 (अभिव्यक्ति की आज़ादी) का उल्लंघन होगी तथा; हुड़दंगियों को वीटो का अधिकार नहीं दिया जा सकता है।

निजता व आत्म-सम्मान पर आघात

17 जुलाई को केरल के कोलम में मेडिकल पढ़ाई के लिए ली जाने वाली नीट की प्रवेश परीक्षा के लिए आए विद्यार्थियों को सुरक्षा के नाम परअपने अंतःवस्त्र हटाने को कहा गया। एक छात्रा की शिकायत के बाद पुलिस ने जाँच शुरु की और फिर अन्य छात्राएँ भी आगे आईं। अयूर स्थित विज्ञान व तकनीकी के मार थोमा कॉलेज में छात्राओं की बनियान में धातु के हुक पर आपत्ति करते हुए निरीक्षकों ने उन्हें बनियान उतारकर परीक्षा देने को कहा। इस प्रकरण में बहुत-सी छात्राओं को मानसिक आघात पहुँचा और ज़ाहिर है कि उनकी परीक्षा पर इसका बुरा असर पड़ा। परीक्षा के बाद भी उन्हें किसी सुरक्षित जगह पर कपड़े बदलने की इजाज़त नहीं दी गई, बल्कि कैंपस के बाहर जाने को कहा गया। एक तरफ़ परीक्षा की आयोजक संस्था एनटीए ने इस बाबत कोई भी शिकायत मिलने से इंकार किया, तो विरोध के बढ़ने पर दूसरी तरफ़ उसने इसके लिए स्थानीय निजी एजेंसी को ज़िम्मेदार ठहराया! घटना के सार्वजनिक होने के बाद विभिन्न छात्र व युवा संगठनों ने कॉलेज तक विरोध मार्च निकाले तथा राज्य मानव अधिकार आयोग व राज्य युवा आयोग ने भी केस दर्ज करते हुए रिपोर्ट माँगी। सुरक्षा उपायों के नाम पर विभिन्न प्रवेश परीक्षाओं में अभ्यर्थियों के साथ अपमानजनक व्यवहार बढ़ते-बढ़ते एक मानक के तौर पर स्थापित होता जा रहा है। इसके लिए सत्ता की तानाशाही, प्रशासन की असंवेदनशीलता, छात्र संगठनों की कमज़ोर प्रतिक्रिया तथा परीक्षाओं की प्रक्रिया पर अविश्वास के अलावा, एनटीए जैसी केंद्रीकृत व ग़ैरजवाबदेह संस्थाओं की बढ़ती भूमिका ज़िम्मेदार है। छात्र-छात्राओं की गरिमा बरक़रार रखने के लिए इन सबको पलटने की ज़रूरत है।

अगस्त में कोलकाता के सेंट ज़ेवियर विश्वविद्यालय ने अपनी पूर्व सहायक प्रोफ़ेसर से, जिन्हें इंस्टाग्राम पर अपनी एक निजी फ़ोटो डालने पर पिछले साल इस्तीफ़ा देने को मजबूर कर दिया गया था, 99 करोड़ हर्जाने की माँग की। इसके पहले मार्च में उक्त महिला प्रोफ़ेसर ने विश्वविद्यालय को एक क़ानूनी नोटिस भेजकर बहाली व माफ़ी की माँग की थी। अपने इस्तीफ़े में उन्होंने दबाव डाले जाने तथा अपने और परिवार को गहरे सदमे व तनाव से गुज़रने की बात कही थी। उन्होंने अपने नोटिस में यह भी कहा कि विश्वविद्यालय ने उनके सवालों का जवाब नहीं दिया कि - उनकी फ़ोटो को लेकर किसने शिकायत की, उनकी एक ऐसी निजी फ़ोटो जिसे उन्होंने संस्थान से जुड़ने के महीनों पहले डाला था, विश्वविद्यालय को किसने पहुँचाई - और न ही भरोसा दिलाया कि उनकी फ़ोटो को हटा दिया जाएगा। उन्होंने पुलिस में भी शिकायत की थी। हालाँकि, बात में यह सामने आया कि विश्वविद्यालय के एक छात्र के पिता ने प्रशासन को मेल लिखकर 'अश्लीलता' की शिकायत की थी। एक ऑनलाइन अभियान में क़रीब 13,000 लोगों ने विश्वविद्यालय के कुलपति फ़िलिक्स राज के ख़िलाफ़ हस्ताक्षर किए। इस पूरे प्रकरण से उठी बहस में दो सवाल उठे - शिक्षकों के निजी जीवन व महिलाओं के शरीर पर लगने वाली पाबंदियों को लेकर। शिक्षिका के समर्थन में चले अभियान के दौरान महिलाओं ने यह कटाक्ष करते हुए तैराकी की पोशाक में अपनी फ़ोटो साझा की कि अगर वो शिक्षिका होतीं तो ऐसा नहीं कर पातीं! छात्राओं ने शिक्षिका का समर्थन करते हुए अपने शिक्षकों से प्रति-सवाल भी पूछे कि क्या शिक्षक ख़ुद भी उनके कपड़ों पर इतनी निगरानी नहीं रखते हैं।

चाहे वो छात्राओं को हिजाब नहीं पहनने देने की हिंसा हो या ईरान जैसे देशों में सर ढकने पर मजबूर करने वाली हिंसा हो, चाहे वो 'कम' कपड़े पहनने पर शर्मिंदा करने की संस्कृति हो या कपड़े उतरवाने पर आमादा संस्कृति, ये सभी परिस्थितियाँ स्त्री की अपनी इच्छा या आज़ादी को पितृसत्ता के इच्छा व ज़रूरत के अनुसार ढालने की कोशिश दर्शाती हैं।

स्कूली वर्दी

फ़रवरी के मध्य में अरुणाचल प्रदेश के निजी स्कूलों ने हफ़्ते में एक दिन विद्यार्थियों को अपनी पारंपरिक पोशाक पहनने की इजाज़त देने का फ़ैसला किया। उन्होंने इसे स्थानीय संस्कृति के संरक्षण के अलावा बुनकरों व कपड़े के काम से जुड़े अन्य कारीगरों के हित में लिया गया फ़ैसला बताया। ग़ौरतलब है कि घोषणा इसे अनिवार्य तो नहीं बनाती है, मगर

विद्यार्थियों की इच्छा-आज़ादी को 'पारंपरिक पोशाक' तक सीमित करती है। इस निर्णय के स्थानीय संदर्भ हैं जिनमें तथाकथित मुख्यधारा व 'आधुनिकता' की एकरूपता के दबाव के चलते आदिवासी/जनजातीय समुदायों में सांस्कृतिक विलुप्तीकरण का स्वाभाविक डर शामिल है, लेकिन इसे उसी दौरान कर्नाटक में उठे हिजाब के सवाल की पृष्ठभूमि में भी देखा जा सकता है।

अगस्त में केरल शैक्षिक अनुसंधान व प्रशिक्षण की राज्य परिषद (एससीईआरटी) द्वारा तैयार किए जा रहे स्कूल पाठ्यचर्या रूपरेखा के प्रारूप के जेंडर संबंधी प्रस्तावों पर इस्लामी संगठनों द्वारा विरोध सामने आया। ख़ासतौर से जेंडर निरपेक्ष वर्दी के प्रस्ताव को लेकर समर्थ केरल जमियाथुल उलमा, ऑल इंडिया सुन्नी जमियाथुल उलमा, इंडियन नैशनल लीग व जमात-ए-इस्लामी जैसे पहचान व धर्म आधारित संगठन विरोध में उतर आए। इसके पीछे एक संदर्भ हाल ही में राज्य बाल अधिकार संरक्षण आयोग द्वारा बाल/बालिका विद्यालयों को सह-शिक्षा स्कूलों में परिवर्तित करने का निर्देश भी था। हक़ीक़त यह है कि जबकि साझी या जेंडर-निरपेक्ष वर्दी का चलन धीरे-धीरे बढ़ ही रहा है, नीति-निर्देशों का हिस्सा बनते ही यह रेखांकित हो गया व इसने उन्हीं रूढ़िवादी ताक़तों से विरोध आकर्षित किया जिन्होंने मुस्लिम पृष्ठभूमि की छात्राओं द्वारा ओणम पर अपने साथियों के साथ समारोह में हिस्सा लेने व नाचने पर अनाधिकार ऐतराज़ जताया था। मामले को तूल पकड़ता देख राज्य के सामान्य शिक्षा के मंत्री ने कहा कि वर्दी को थोपा नहीं जाएगा, बल्कि समुदाय व अभिभावकों के साझा निर्णय के अधीन रखा जाएगा। जिसका मतलब है कि यहाँ भी विद्यार्थियों - यह चिंता दरअसल छात्राओं के पहनावे के बारे में ही व्यक्त की जाती है - की अपनी पसंद या आराम को दरकिनार करके उनकी निजता को उनके बाप-दादाओं की छुद्र घबराहट व अधीरता के शिकंजे में क़ैद रहने दिया जाएगा। जब छात्राओं के पहनावे की बात आती है तो स्थानीय समुदाय विकराल राज्य बन जाता है और राज्य एक बेचैन व डरा हुआ समुदाय (पिता)।

राज्यों से

21 अगस्त को आई एक ख़बर के अनुसार **असम** के शिक्षा मंत्री रनोज पेगु ने, राज्य के सामने वित्तीय संकट का हवाला देते हुए, विधायकों से कहा कि वो सरकारी स्कूलों के रखरखाव व ढाँचागत सुधार के लिए लोगों से वित्तीय मदद जुटाएँ। पिछले कुछ महीनों के दौरान राज्य सरकार द्वारा, ख़राब परीक्षा परिणाम व विद्यार्थियों की कम संख्या का हवाला देकर, कई सरकारी स्कूलों को बंद या एकीकृत किया गया था। ये कोई हैरानी की बात नहीं है कि हज़ारों करोड़ रुपये बहाकर राज्य के बाशिंदों की नागरिकता की सख़्त व जानलेवा पहचान करने के बाद, सांप्रदायिक अपेक्षानुसार परिणाम न आने पर लोगों पर दोबारा हमला बोलने को तैयार सरकार के पास उन्हीं लोगों के बच्चों की शिक्षा के लिए पैसा नहीं है, मगर यह ज़रूर विडंबनापूर्ण है कि उनके पैसों की मदद लेने के लिए उनकी नागरिकता की प्रामाणिकता साबित करना ज़रूरी नहीं होगा।

21 अगस्त को जबकि विभिन्न विभागों के ग्रेड तीन व चार के 30,000 पदों के लिए प्रवेश परीक्षा आयोजित की जा रही थीं, राज्य के 35 में से 25 ज़िलों में चार घंटों के लिए मोबाइल इंटरनेट बंद कर दिया गया। इसके बाद 21 व 28 अगस्त तथा 11 सितंबर को आयोजित परीक्षाओं के दौरान भी सुबह 10 बजे से दोपहर 12 बजे तक, फिर दोपहर 2 बजे से शाम 4 बजे तक मोबाइल इंटरनेट बंद रखा गया। केंद्रों के आस-पास धारा 144 अलग से लागू थी। आलोचकों ने इसे विशेषकर हास्यास्पद बताया क्योंकि केंद्रों में फ़ोन ले जाने की इजाज़त तो वैसे भी नहीं थी। ऊपर से, ऐसे सख़्त दिखने वाले उपाय सनसनी तो पैदा करते हैं, मगर इस बात की कोई गारंटी नहीं देते, बल्कि इस संभावना से ध्यान भटकाते हैं कि परीक्षा पत्र ख़ास लोगों के हाथ पहले-ही लग गया होगा। एक ओर देश में शिक्षा से लेकर अर्थव्यवस्था तक में इंटरनेट व डिजिटल क्रांति का ढोल पीटा जाता है, तो दूसरी ओर पूरे-पूरे क्षेत्रों व लोगों को तानाशाही फ़रमानों के ज़रिए नेट-अनिवार्यता से अचानक नेटबंदी की स्थिति में डाल दिया जाता है।

फ़रवरी के आरंभ में **हरियाणा** के स्कूली शिक्षा बोर्ड ने सरकारी व निजी सभी तरह के स्कूलों की आठवीं कक्षा के लिए परीक्षा आयोजित करने का फ़ैसला किया। विभिन्न निजी स्कूलों के अतिरिक्त, अभिभावकों ने इसे, कोविड की स्कूलबंदी के संदर्भ में, तर्कहीन बताया तथा स्कूलों पर केन्द्रीकरण थोपने का इल्ज़ाम लगाया।

मार्च के अंतिम हफ़्ते में राज्य सरकार ने हरियाणा स्कूली शिक्षा नियमों (एचएसई रूल्ज़) 2003 से नियम 134A को, वर्षों के दिखावे व निजी स्कूलों के साथ जनता के चूहा-बिल्ली के खेल के बाद, अंततः हटा दिया। यह नियम निजी स्कूलों की दस प्रतिशत सीटों पर 'ग़रीब, प्रतिभाशाली' बच्चों को दूसरी से बारहवीं कक्षा तक मुफ़्त शिक्षा का हक़ देता था। सरकार ने इस क़दम के पक्ष में यह दलील दी कि शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 को बेहतर ढंग से लागू करने के लिए ऐसा करना ज़रूरी था। यह दलील इसलिए भी धूर्ततापूर्ण थी क्योंकि एक तो २००९क अधिनियम केवल आठवीं कक्षा तक की शिक्षा का हक़ देता है, वहीं इसके तहत इस सत्र के प्रवेश तो पहले-ही पूरे हो चुके थे! सरकार द्वारा 134A के प्रवेश के तहत निजी स्कूलों को फ़ीस की भरपाई न किए जाने की शिकायत का हवाला देते हुए निजी स्कूलों के प्रबंधन ने इस फ़ैसले का स्वागत किया और इस तरह सरकार की पोल खुल गई।

9 मई को शिक्षकों व ग़ैर-शैक्षणिक कर्मियों ने राज्य के विश्वविद्यालयों को ग्रांट के बदले ऋण देने के फ़ैसले के प्रति 11 मई को व्यापक विरोध दर्ज करने का निर्णय लिया। महीने की शुरुआत में वित्त विभाग के एक पत्र के सार्वजनिक होने से भांडा फूटा था, जिसमें राज्य के दस विश्वविद्यालयों को वर्तमान वित्तीय वर्ष के लिए 147.75 करोड़ रुपये ऋण दिए जाने की मंज़ूरी दी गई थी। इस नीति का विरोध करने का निर्णय रोहतक में हरियाणा विश्वविद्यालय और कॉलेज शिक्षक संगठनों के महासंघ की बैठक में लिया गया। विरोध के तहत मुख्य मंत्री मनोहर लाल व शिक्षा मंत्री कंवर पाल तथा यूजीसी अध्यक्ष को इस नीति को वापस लेने की माँग का ज्ञापन देने का फ़ैसला किया गया। महासंघ ने राज्यपाल से मिलकर उन्हें ज्ञापन सौंपा। महासंघ के अध्यक्ष विकास सिवाच ने इसे कमज़ोर वर्गों के विरुद्ध लिया गया क़दम बताया क्योंकि संस्थानों को ऋण की व्यवस्था न सिर्फ़ फ़ीस बढ़ोतरी सुनिश्चित करेगी, बल्कि निजीकरण की रफ़्तार भी तेज़ करेगी। जबकि विश्वविद्यालयों को जानबूझकर वित्तीय संकट की हालत में धकेला जा रहा है ताकि इन्हीं हालात को फिर और भी इनके ख़िलाफ़ इस्तेमाल किया जा सके। उदाहरण के तौर पर, जबकि रोहतक के महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय ने 200 करोड़ की माँग की थी, उसे केवल 23 करोड़, वो भी ऋण की पहली क़िस्त के रूप में, दिए गए! फ़ंड की कमी से शोध कार्य का प्रभावित होना भी तय है। वेतन भुगतान अनिश्चितता की स्थिति में आ जाएगा। चूँकि वो ग्रांट पर और भी अधिक निर्भर करते हैं, इसलिए नए विश्वविद्यालयों के अस्तित्व के लिए तो यह और भी गंभीर चुनौती साबित होगा।

अगस्त के अंतिम हिस्से में जन शिक्षा अधिकार मंच, दिशा छात्र संगठन आदि के नेतृत्व में व ग्रामीणों के स्वतःस्फूर्त आंदोलन के तहत राज्य में सैकड़ों स्कूल बंद करने, शिक्षकों के हज़ारों पद ख़ारिज करने व रिक्तियाँ नहीं भरने के सिलसिले के विरोध में छात्र-छात्राओं तथा शिक्षकों ने व्यापक विरोध-प्रदर्शन किए। कई स्कूलों पर ताला जड़ दिया गया और विद्यार्थी व अभिभावक तख़्तियाँ-बैनर लिए स्कूलों के आगे धरने पर बैठ गए। उधर राज्य सरकार ने 'चिराग़' योजना शुरु करने की घोषणा की। गुमराह करने वाले नाम की इस योजना के अंतर्गत राज्य सरकार द्वारा 1,500 स्कूलों को मॉडल संस्कृति स्कूल की अलगाववादी व बहिष्करणवादी श्रेणी में बदला जा रहा है, जिसमें प्रवेश शुल्क 1000 रुपये है व मासिक शुल्क 500 तक, तथा दूसरी तरफ़ सरकारी स्कूल छोड़कर निजी स्कूल में जाने वाले बच्चों के लिए 700-1100 रुपये तक का मासिक सहयोग देने का प्रावधान है। न सिर्फ़ यह योजना शिक्षा अधिकार अधिनियम को कमज़ोर साबित करते हुए उसकी ख़ामियों का चालाकी से इस्तेमाल करती है (अधिनियम 'विशिष्ट' श्रेणी के स्कूलों को क़ानूनी बाध्यताओं से बरी करता है), बल्कि पीपीपी (सार्वजनिक वित्त उपलब्ध कराकर निजी को सहायता पहुँचाने की 'साझेदारी') के तहत निजीकरण की नीति का ताज़ा संस्करण पेश करती है। साफ़ है, नवउदारवादी सरकारों के पास पैसा नहीं होगा तो वो स्कूल बंद करेंगी, और अगर पैसा होगा, तो भी वो उसे निजी प्रबंधन की जेब में डालकर सार्वजनिक स्कूलों को बंदी की कगार पर पहुँचाने का काम करेंगी।

जून के अंत में **जम्मू-कश्मीर** में राजकीय दमन की ताज़ा मिसाल के रूप में घाटी के हज़ारों निजी स्कूलों पर प्रतिबंध लगाकर दो लाख से अधिक बच्चों की शिक्षा को ख़तरे में डाल दिया गया। घाटी के दस ज़िलों के मुख्य शिक्षा अधिकारियों ने राज्य या साझी भूमि पर चलने के आरोप लगाकर इन निजी स्कूलों को बंद करने के आदेश जारी किए और इनके विद्यार्थियों को निकट के सरकारी स्कूलों में प्रवेश लेने को कहा। जबकि इनमें से अधिकतर स्कूल सरकारी भूमि पर नहीं, बल्कि समुदाय की भूमि पर ट्रस्ट या समितियों द्वारा चलाए जा रहे हैं। जम्मू-कश्मीर मंत्रिमंडल का 2011 का एक आदेश भी इन्हें चलने की इजाज़त देता है। राज्य के निजी स्कूलों की असोसिएशन ने इस क्रूर विडंबना की ओर इशारा किया कि जबकि शिक्षा में निवेश के नाम पर बाहरी ताक़तों को ज़मीन मुफ्तय सस्ते दर पर दी जा रही है, फ़ौजी महकमे व होटल तक सरकारी ज़मीन पर स्थापित हैं, इन स्कूलों को एक एक आनन-फ़ानन की कार्रवाई में निशाना बनाया जा रहा है। फ़िलहाल अदालत ने अगली सुनवाई तक इस फ़ैसले पर रोक लगाई है। उधर राज्य के दलगत विपक्ष ने इस आदेश का विरोध जताते हुए स्कूलों को समय देने व फ़ीस लेकर अनुमति देने की माँग की।

तमिल नाडु में जुलाई के मध्य में पेरियार विश्वविद्यालय में इतिहास के स्नातकोत्तर कोर्स के दूसरे वर्ष की परीक्षा के एक पेपर में जाति संबंधी अपमानजनक प्रश्न पर विरोध जताया गया। इसमें पूछा गया था कि राज्य में इन चार में से कौन-सी जाति सबसे 'नीचे' है - महार, नदार, एझावा व हरिजन। विश्वविद्यालय ने जाँच के आदेश दिए और सफ़ाई दी कि उक्त प्रश्न दूसरे विश्वविद्यालय से तैयार होकर आया था, जबकि हक़ीक़त तो यह है कि परीक्षा-पत्र को जाँचने की समिति तो कोर्स वाले विश्वविद्यालय में होती ही है। डीवीके व पीएमके जैसे दलों ने असंवेदनशील प्रश्न बनाने वालों के ख़िलाफ़ कार्रवाई की माँग की, जबकि पेरियार विश्वविद्यालय के प्रशासन ने इसे विश्वविद्यालय को बदनाम करने का षड्यंत्र बताया।

सितंबर की शुरुआत तक यह साफ़ हो गया कि **पश्चिम बंगाल** के कई कॉलेजों में सीटें खाली रहेंगी। इसके पीछे के प्रमुख कारणों में शिक्षा के स्तर से असंतोष, नए निजी कॉलेजों की संख्या में विस्फोट तथा आमजन में आर्थिक संकट की स्थिति का होना शामिल है। नतीजतन, कहीं कॉलेज को सीटें घटानी पड़ रही हैं, तो कहीं शिक्षक संभावित विद्यार्थियों से प्रवेश लेने के लिए अपील कर रहे हैं और कहीं प्रवेश की अंतिम तिथि बढ़ाई जा रही है।

हिंसा के पाठ

जनवरी के अंत में **तमिल नाडु** के तंजावूर ज़िले के एक निजी स्कूल में पढ़ने वाली लावन्या नाम की 17 वर्षीय छात्रा की आत्म-हत्या को स्कूल प्रशासन द्वारा धर्मांतरण के दबाव का रूप देते हुए भाजपा ने एक चार-सदस्यीय जाँच समिति बनाई। लावन्या का एक वीडियो सामने आया था जिसमें वो धर्मांतरण की बात कह रही थी, लेकिन बाद में यह पता चला कि उसे एक दक्षिणपंथी संगठन के पदाधिकारी ने अस्पताल जाकर तैयार किया था और एडिट करके सार्वजनिक किया था। भाजपा ने केस को सीबीआई के सुपुर्द करने की माँग की। 21 फ़रवरी को, मद्रास उच्च न्यायालय के आदेश पर, इस त्रासद घटना की जाँच सीबीआई को सौंप दी गई। छात्रा का परिवार अरियालूर ज़िले में रहता है। पुलिस ने विभिन्न धाराओं के तहत केस दर्ज करते हुए 67 वर्षीय हॉस्टल वार्डन को हिरासत में ले लिया था। 19 जनवरी को छात्रा की मौत के बाद दूसरे आरोप लगाए गए तो केस ने नया रूप ले लिया।

13 अगस्त को **राजस्थान** के जालोर के सुराणा गाँव में दलित पृष्ठभूमि के नौ वर्षीय छात्र इंदर कुमार मेघवाल की एक निजी स्कूल, सरस्वती विद्या मंदिर, में शिक्षक के हाथों जातिगत हिंसा का शिकार होने के परिणामस्वरूप मौत हो गई। 20 जुलाई के दिन तृतीय कक्षा के इंदर को तथाकथित उच्च जाति से संबंध रखने वाले शिक्षक के पानी के मटके को छूने के कारण पीटा गया था। छात्र के परिवारजनों के अनुसार शिक्षक छैल सिंह ने मारते समय जातिसूचक गालियाँ भी दी थीं।

इंदर को इलाज के लिए जालोर से उदयपुर व फिर अहमदाबाद ले जाया गया मगर उसे बचाया नहीं जा सका। हालाँकि, मौत की ख़बर मीडिया में सार्वजनिक होने पर तथा परिवारजनों व समुदाय के विरोध के बाद धारा 302 व अनुसूचित जाति/जनजाति अत्याचार निवारण अधिनियम के तहत केस दर्ज किया गया, लेकिन यह प्रशासन पर जातिगत सत्ता के चरित्र का असर ही था कि पुलिस अधीक्षक ने जाँच ख़त्म होने से पहले-ही जातिगत हिंसा की पुष्टि नहीं होने की बात कह दी। पीड़ित परिवार ने शिक्षक के ख़िलाफ़ सख़्त कार्रवाई व स्कूल की मान्यता रद्द करने की माँग की। विरोध-प्रदर्शन के स्वरों को दबाने के लिए, हमेशा की तरह, स्थानीय स्तर पर मोबाइल-इंटरनेट सेवा बंद कर दी गई। मुख्यमंत्री ने पीड़ित परिवार को 5 लाख की आर्थिक सहायता देने की घोषणा की, जिसे अपर्याप्त मानते हुए रोष प्रकट किया गया। ग़ौरतलब है कि जबकि दूसरी जगहों से पीड़ित परिवार व दमित समुदाय को समर्थन देने आ रहे राजनैतिक कार्यकर्ताओं को ज़िले में प्रवेश करने नहीं दिया गया, वहीं धारा 144 के बावजूद प्रभावित क्षेत्र में दबंग जातियों की महापंचायतें आयोजित होती रहीं। ज़ाहिर है कि सामंती व जातिगत सत्ता के रहते क़ानून की नज़र में सब बराबर नहीं हो सकते हैं।

अंग्रेज़ी माध्यम और शिक्षा का सवाल

एक विडंबनापूर्ण नामकरण के तहत 'महात्मा गाँधी' के नाम पर राजस्थान सरकार द्वारा तीन साल पहले शुरु किए गए इंग्लिश माध्यम स्कूलों के प्रति विद्यार्थियों व अभिभावकों का गुस्सा अब सामने आने लगा है। इस विशिष्ट श्रेणी को खड़ा करने के लिए कोई नए स्कूल नहीं खोले गए, बल्कि विद्यमान स्कूलों को ही परिवर्तित कर दिया गया। इस सत्र में 214 स्कूलों को शामिल करने से इनकी संख्या 1,200 तक पहुँच गई है। जब विशेषकर उच्च-कक्षाओं के विद्यार्थियों ने हिंदी में पढ़ाई जारी रखने का विकल्प चुना, तो उन्हें स्कूल से तबादला लेने के लिए मजबूर किया गया। कई ऐसे स्कूलों को छोड़ने वाले विद्यार्थियों को बहुत दूर स्थित किसी स्कूल में ही जाना था, क्योंकि आसपास कोई अन्य स्कूल नहीं था। उदाहरण के लिए, जयपुर के सोमेश्वरपुरी स्कूल के डेढ़ हज़ार से अधिक विद्यार्थियों में से केवल 200 ने इंग्लिश माध्यम के लिए हामी भरी। कई जगहों पर अभिभावकों ने ऐसे जबरन तबादले के विरोध में स्कूलों पर ताले लगा दिए। इस नीति का विरोध कर रहे लोगों का एक प्रतिनिधिमंडल शिक्षा मंत्री बुलाकी दास कल्ला से मिला और स्कूलों से बड़ी संख्या में बच्चों की बेदख़ली की आशंका जताते हुए ऐसे स्कूलों को दो पालियों में चलाने की माँग की।

इसी तरह तीन साल पहले छत्तीसगढ़ सरकार ने भी, 'स्वामी आत्मानंद' के नाम पर, राजकीय इंग्लिश माध्यम स्कूल खोले हैं। इनकी शुरुआत राजधानी रायपुर से की गई थी और इस सत्र में खुले 171 स्कूलों को मिलाकर इनकी संख्या 250 के क़रीब पहुँच गई है। रपटों के अनुसार इन स्कूलों को भी अलग से नहीं खड़ा किया गया है, बल्कि विद्यमान स्कूली भवनों में एक पाली आरक्षित कर दी गई है। सरकार द्वारा किए गए दावों के अनुसार, इन स्कूलों में अधिकतर विद्यार्थी वंचित वर्गों से हैं, इनमें बेहतर ढाँचागत सुविधाएँ उपलब्ध हैं, इन्हें अधिक स्वायत्तता प्राप्त है (जिसका मतलब कुछ भी हो सकता है), इनके शिक्षकों का चयन विशिष्ट रूप से किया जाता है और इनके विद्यार्थियों के लिए वज़ीफ़ों की व्यवस्था है। ज़ाहिर है कि इनमें से कुछ बातों का असल मतलब स्पष्ट नहीं है और कुछ ऐसी हैं जो या तो वैसे भी सभी स्कूलों में होती हैं या होनी चाहिए। रपटों के अनुसार, मुख्य मंत्री 'भेंट-मुलाक़ात' नामक जन-सम्पर्क कार्यक्रम में विद्यार्थियों से छत्तीसगढ़ी में सवाल करते हैं और वो इंग्लिश में जवाब देते हैं, जिसका प्रचार किया जाता है। यह शिक्षा में गुणवत्ता को इंग्लिश माध्यम से जोड़ने या उस तक सीमित कर देने तथा निजी स्कूलों तक अनुसूचित जाति/जनजाति व अन्य वंचित पृष्ठभूमियों के बच्चों की पहुँच न होने को फिर मुट्ठीभर बच्चों के लिए विशिष्ट स्कूलों की व्यवस्था करके चुनावी फ़ायदे के लिए इस्तेमाल करने की नीति है। अगस्त में छत्तीसगढ़ सरकार ने इसी कड़ी में 10 नए इंग्लिश माध्यम कॉलेज खोलने का फ़ैसला किया। इन्हें 'स्वामी आत्मानंद आदर्श कॉलेज' के नाम से जाना जाएगा। बताया गया कि इनकी शुरुआत अगले वर्ष मुख्य शहरों से की जाएगी और इन्हें खड़ा करने में कोई नया ख़र्च नहीं होगा क्योंकि सामान्य कॉलेजों के लिए सात भवन तो पहले-से ही तैयार हैं और बाक़ी तीन सामान्य कॉलेजों की दूसरी पाली में चलेंगे। अगर अतिरिक्त ख़र्च की ज़रूरत

पड़ती है तो कॉरपोरेट सामाजिक दायित्व (CSR) व ज़िला अधिकारी के फ़ंड से वित्तीय सहायता ली जाएगी। यह घोषणा 422 नए इंग्लिश माध्यम स्कूल खोलने के फ़ैसले के तुरंत बाद की गई जिससे ज़ाहिर होता है कि इन स्कूलों से पढ़कर निकलने वाले विद्यार्थियों की उच्च शिक्षा की व्यवस्था करने की समस्या सरकार को विवश कर रही है। बताया गया कि इन कॉलेजों के लिए 1,300 असिस्टेंट प्रोफ़ेसर की भर्ती का काम शुरु किया जा चुका है तथा इनमें से बहुत-से इंग्लिश में निपुण होंगे। यानि, इस नीति में शिक्षकों के चयन से लेकर उनकी अपनी पढ़ाई व उपलब्धता अनिश्चित है। यह भी ग़ौरतलब है कि जहाँ इस बात का झूठा ढोल पीटा जा रहा है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने मातृभाषा को माध्यम के रूप में अभूतपूर्व महत्त्व दिया है, वहीं भाजपा शासित राज्यों सहित तमाम राज्यों के सरकारी स्कूलों में इंग्लिश माध्यम की नीति ज़ोर पकड़ती जा रही है। यह भारत की भाषाई रूप से विविध व विषम परिस्थिति तथा एक दोग़ली शिक्षा व्यवस्था के प्रति वंचित-आमजनों के सहज अविश्वास जनित दबाव का नतीजा भी है।

अफ़ग़ानिस्तान में छात्राओं-महिलाओं का संघर्ष

मार्च के अंत में लड़कियों के उच्च माध्यमिक स्तर के स्कूलों को खोलने के कुछ घंटों बाद ही तालिबान प्रशासन द्वारा उन्हें बंद रखने के फ़ैसले के ख़िलाफ़ दर्जनों लड़कियों व महिलाओं ने काबुल में प्रदर्शन किया। 23 जनवरी को हज़ारों लड़कियाँ स्कूल गई थीं, मगर घंटों बाद ही उनकी ख़ुशी ग़म में बदल गई। प्रदर्शनकारी चौराहों पर किताबें लेकर जमा हुईं व उन्होंने 'स्कूल खोलो! इंसाफ़! इंसाफ़!' के नारे लगाए। ये प्रदर्शन महिला अधिकार समूहों द्वारा आयोजित किए गए थे। तालिबान के लड़ाकों के स्थलों पर आने के बाद ये प्रदर्शन दबा दिए गए। इस्लामी सत्ताधारियों ने अपने निर्णय का कोई कारण बताने की ज़रूरत नहीं समझी। आरंभिक दिनों के विरोध-प्रदर्शनों के बाद तालिबान ने इस नेतृत्व को अवैध हिरासत में ले लिया और इस तथ्य से इंकार भी किया। रिहा होने पर अधिकतर महिलाओं के पास तात्कालिक ख़ामोशी के सिवाय कोई व्यावहारिक चारा नहीं था। फिर मार्च के अंत में चार महिला अधिकार कार्यकर्ताओं ने ठाना कि अगर एक हफ़्ते में लड़कियों के उच्च माध्यमिक स्कूल नहीं खोले गए तो वो विरोध प्रदर्शन आयोजित करेंगी। तालिबान नेतृत्व ने इसके जवाब में व्यावहारिक मुश्किलों का बहाना बनाया। सितंबर की शुरुआत में पकतिया प्रान्त में कुछ जगहों पर क़बीलाई वृद्धजनों व प्रिंसिपलों की सलाह पर, लेकिन तालिबान शिक्षा मंत्रालय की इजाज़त के बग़ैर, छठी कक्षा से ऊपर के लड़कियों के स्कूल खोले गए। मगर तालिबान ने इन्हें लगभग फ़ौरन ही बंद करा दिया। गरदेज़ जैसी जगहों पर आँखों में आँसू और हाथों में किताबें लेकर दर्जनों छात्राओं ने विरोध दर्ज किया। साफ़ है कि लड़कियों की शिक्षा को लेकर तालिबान के तमाम शुरुआती इशारे दिखावटी थे और यह महिला-विरोधी विचारधारा का पर्याय है।

राम नवमी के अवसर पर आरएसएस-एबीवीपी गुंडागर्दी और जेएनयू परिसर में छात्रों पर हमला

प्रेस स्टेटमेंट (15 अप्रैल, 2022)

ऑल इंडिया फोरम फॉर राइट टू एजुकेशन (AIFRTE)

अखिल भारत शिक्षा अधिकार मंच बहुत ही गंभीरता से रामनवमी के अवसर पर जेएनयू छात्रावास में गैर-शाकाहारी भोजन परोसने के नाम पर छात्रों पर संघ परिवार के छात्र संगठन अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद के लोगों द्वारा गुंडागर्दी और शारीरिक हमला की तीव्र निंदा करता है। आमतौर पर रविवार को छात्रावास में शाकाहारी भोजन परोसा जाता है और पूर्व की भांति रविवार को रामनवमी के दिन भी इसी की तैयारी चल रही थी।

संघ परिवार के संगठनों ने देश के विभिन्न हिस्सों में गैर-शाकाहारी भोजन को बेचने, तैयार करने और सेवा करने पर हमला करने के लिए नवरात्रि काल का चयन किया है। लक्ष्य स्पष्ट है, क्योंकि यह अवधि रमज़ान के महीने के साथ मेल खाती है। इसका उद्देश्य हिंदुत्व की प्रमुख राजनीति और हमलों को बढ़ावा देना है जो विशेष रूप से जनता की राय को ध्रुवीकृत करेगा, जहां विशेष रूप से सभी स्तरों पर चुनाव- नगरपालिकाओं से दिल्ली और राज्य स्तर पर आने वाले महीनों में आयोजित किए जाने वाले हैं। इस प्रकार दिल्ली के नगरपालिकाओं के भाजपा के मेयरों ने शहर में मांस की दुकानों को बंद करने का मुद्दा उठाया। कोई आधिकारिक कदम नहीं उठाए गए, क्योंकि उनके साथ कोई कानूनी स्थिति नहीं होगी, लेकिन यह संदेश संघ के गुंडों को भेजा गया था कि उन्हें यह सुनिश्चित करने के लिए व्यक्तियों और प्रतिष्ठानों को आतंकित करना चाहिए और यह सुनिश्चित करना चाहिए कि कसाई और मांस प्रदाता दबाव में और सुरक्षा चिंताओं के लिए अपनी दुकानों को बंद रखें।

संघ परिवार ने देश भर में नवरात्रि त्योहार को "मनाया" है, जिसमें हिंसा, शत्रुता और आक्रामकता का अलग -अलग पैमाना उनके खिलाफ है जो हिंदू धर्म के बारे में उनके संकीर्ण दृष्टिकोण को स्वीकार नहीं करते हैं और विशेष रूप से लोकतंत्र की उनकी सिकुड़ती अवधारणा को स्वीकार नहीं करते हैं।

जेएनयू परिसर में, बहुतेरे हिंदुवादी संगठनों ने परिधान के धर्मनिरपेक्ष चरित्र का उल्लंघन करने के आधार पर शैक्षिक संस्थानों में हिजाब पहनने के खिलाफ हमले किए, हॉस्टल में एक से बढ़ कर एक "हवन" का आयोजन किया और मांग की कि रविवार को गैर-शाकाहारी पकवान हॉस्टल मेस में परोसा जाएगा। जब मेस कमेटी और कई छात्रों ने इस पर आपत्ति जताई तो एबीवीपी ने हवन में व्यवधान के नाम पर सार्वजनिक रूप से सभी शैक्षणिक संस्थानों के धर्मनिरपेक्ष चरित्र को नज़रअंदाज़ करते हुए छात्रों के एक समूह पर शारीरिक हमला किया। इस शातिर हमले के बाद कई गंभीर रूप से घायल हुये और खून बहा।

जैसी कि उम्मीद की जा सकती है जब एबीवीपी और अन्य संघ पारिवर संगठन हिंसक हमले करते हैं, पुलिस या तो रहस्यपूर्ण तरीके से निष्क्रिय रहती है या फिर हिंसा में सक्रिय सुविधा प्रदान करती है। पुलिस के दृष्टिकोण की पूर्वाग्रही प्रकृति इस तथ्य से स्पष्ट है कि 2020 में एबीवीपी व्यक्तियों द्वारा हिंसा की एक घटना में सीसीटीवी फुटेज पर स्पष्ट रूप से देखे गए लोगों की, गिरफ्तारी या पूर्ण जांच नहीं की गई है।

स्थिति पूरी तरह से निंदनीय है और एआईएफआरटीई किसी भी व्यक्ति या समूहों द्वारा गुंडागर्दी और जबरदस्ती के खिलाफ सख्त जांच और कार्रवाई की मांग करता है, चाहे वे सत्तारूढ़ भाजपा और संघ पारिवर से कितनी भी निकटता से जुड़े हों।

प्रो॰ जगमोहन सिंह — डॉ॰ विकास गुप्ता

अध्यक्ष, अभाशिअमं — संगठन सचिव, अभाशिअमं

******

अखिल भारत शिक्षा अधिकार मंच ने तेलंगाना सरकार द्वारा शिक्षकों की गिरफ्तारी की निंदा की.

16 सितंबर 2022

अखिल भारत शिक्षा अधिकार मंच 18 शिक्षक संगठनों के मंच उपाध्याय संगला पोराटा कमिटी के सदस्यों की तेलंगाना सरकार द्वारा गिरफ्तारी और तेलंगाना पुलिस और केंद्रीय सुरक्षा पुलिस बल द्वारा उन्हें 12 सितंबर 2022 को विभिन्न जिलों में नज़रबंद किए जाने की घटना से मर्माहत है। हमें मालूम है कि 'विधान सभा चलो' प्रतिरोध कार्यक्रम में भाग लेनेवाले सैकड़ों शिक्षकों को 12 सितंबर 2022 की रात को गिरफ्तार कर लिया गया और उन्हें प्रतिरोध कार्यक्रम की समाप्ति के बाद 5 बजे शाम तक रोक कर रखा गया। यह दुर्भाग्यपूर्ण है। आमतौर पर प्रतिरोध को दबाने के लिए तेलंगाना सरकार द्वारा ऐसा ही किया जाता है। इस तरह के प्रतिरोध के लिए सरकार द्वारा इजाज़त न देकर गिरफ्तारी की दमनात्मक कार्रवाई की जाती है। तेलंगाना सरकार द्वारा विधान सभा के बाहर विरोध प्रदर्शन करने पर गिरफ्तारी की कार्रवाई दमनात्मक है और यह लोगों के जनतान्त्रिक अधिकारों का हनन है।

उपाध्याय संगला पोराटा कमिटी द्वारा 'असेंबली चलो' कार्यक्रम के तहत मांगें सिर्फ जायज़ ही नहीं हैं, बल्कि ये सबसे ज़रूरी हैं। ये इसलिए सबसे ज़रूरी हैं, क्योंकि इसमें कहा गया है कि पूरी-की-पूरी स्कूली व्यवस्था को बच्चों और समुदाय के हित में होना चाहिए।

आंदोलनकारी शांतिपूर्ण तरीक़े से स्कूलों में बुनियादी सुविधाओं, इनकी प्राप्ति के लिए बजट और उच्च विद्यालयों में रिक्त पदों को भरने की मांग कर रहे हैं। क्या ये मांगें गैरमुनासिब हैं? क्या यह मांग करना गुनाह है कि स्कूलों में बच्चों के लिए मुनासिब बुनियादी सुविधाएं बहाल होनी चाहिए? अखिल भारत शिक्षा अधिकार मंच शिक्षकों के प्रति तेलंगाना सरकार की दमनात्मक कार्रवाई की घोर निंदा करता है और मांग करता है कि जल्द-से-जल्द उनके जायज मांगों को पूरा किया जाए।

प्रो॰ जगमोहन सिंह — डॉ॰ विकास गुप्ता

अध्यक्ष, अखिल भारत शिक्षा अधिकार मंच — संगठन सचिव, आ भा शि अ मं

*****

चंडीगढ़ एमएमएस वीडियो पर अभाशिअमं का बयान

19 सितंबर, 2022

अखिल भारत शिक्षा अधिकार मंच चंडीगढ़ विश्वविद्यालय, घरुन के छात्रावास के छात्राओं के एमएमएस वीडियो की भयावह घटना की निंदा करता है। यह वीडियो स्नान करते समय उनकी जानकारी के बिना बनाया गया था । वीडियो सोशल मीडिया पर छाया हुआ है।

निजी संस्थान के प्रशासन ने इस घटना को अफवाह का नाम देकर अपने आप को बचाने की कोशिश की है, लेकिन यह बहुत महत्वपूर्ण है कि हजारों छात्र मुखर रूप से इस घटना का विरोध कर रहे हैं। विरोध कर रहे छात्रों की मांग है कि इस मुद्दे की तुरंत जांच की जाए और दोषी लोगों को दंडित किया जाए।

प्रदर्शनकारी छात्र और जंतांत्रिक अधिकारों के लिए लड़नेवाले समूह द्वारा पुलिस की बर्बरता और विश्वविद्यालय प्रशासन द्वारा घटना की लीपापोती की तीव्र निंदा की गई है। पुलिस की बर्बरता में छात्रों को छात्रावास में जबरन बंद कर उन्हें भ्रमण के लिए ले जाना भी शामिल है। इसकी भी आंदोलनकारी छात्रों द्वारा तीव्र निंदा की गई है।

छात्र विरोध के आकार, शक्ति और दृढ़ संकल्प ने पंजाब सरकार को पूरी घटना की जांच का आदेश देने के लिए मजबूर कर दिया है। हालांकि, मजिस्ट्रियल जांच की प्रकृति और दायरे को अभी तक स्पष्ट नहीं किया गया है।

अभाशिअमं उन छात्रों के लिए अपना पूर्ण और मजबूत समर्थन व्यक्त करता है जो अपना विरोध जारी रख रहे हैं। यह मांग करता है कि पंजाब सरकार यह सुनिश्चित करे कि पुलिस उन्हें डराने का कोई प्रयास नहीं करेगी और उन लोगों के खिलाफ कार्रवाई करेगी जो प्रदर्शनकारियों पर अपने पहले हमले के लिए जिम्मेदार थे।

अभाशिअमं छात्रों की एकजुटता के साथ है और पूरी जांच के लिए उनकी वैध और उचित मांगों का समर्थन करता है और घटना की लीपापोती के खिलाफ है। यह घटना समकालीन भारतीय समाज में प्रतिगामी लिंग दृष्टिकोण को दर्शाती है और इसलिए इसे पूर्ण और पारदर्शी जांच का सामना करना चाहिए।

प्रो॰ जगमोहन सिंह — डॉ॰ विकास गुप्ता

(अध्यक्ष, अभाशिअमं) — (संगठन सचिव, अभाशिअमं)

*****

स्टूडेंट ऐक्शन कमेटी, जम्मू का सघर्ष

कोरोना के चलते समाज के हर तबके की तरह छात्रों को भी कई परेशानियों का सामना करना पड़ रहा है। इस पूरे दौर में हमारी पढ़ाई पूरी तरह प्रभावित हुई है। पहली लहर के बाद दूसरी लहर ने आग में घी का काम किया है। इस पूरे दौर में सरकार ने शिक्षा के प्रति लापरवाह रवैया अपनाते हुए छात्रों के भविष्य के साथ खिलवाड़ करने में कोई कसर नहीं छोड़ी

है। केन्द्र शासित प्रदेश जम्मू-कश्मीर भी सरकार के इस रवैये का अपवाद नहीं है। यहां कोरोना की दूसरी लहर खत्म होते ही हमारी सरकार ने 10-09-2021 को स्कूलों व कॉलेजों को खोलने का आर्डर जारी किया (आर्डर नं - 280 - जेके (ऐचई) ऑफ 2021) लेकिन हमारे कॉलेजों की लापरवाही की वजह से हमारे कॉलेज नहीं खोले गए। सरकारी आर्डर जारी करने के बाद फर्ज पूरा हो जाने से आत्मसंतुष्ट हमारी सरकारी अफसरशाही (धारा 370 हटने के बाद जम्मू-कश्मीर सरकार अफसरशाही के रहमो करम पर निर्भर है) ने शिक्षण संस्थानों की तरफ बिल्कुल ध्यान नहीं दिया। अगले चार महीने तक भी कॉलेज बंद रहे। फिर हम कुछ छात्र खुद ही संगठित हुए और 03-12-2021 को जिला कठुआ के जिलाधीश के पास गए। हमने उनके सामने अपनी पूरी बात रखी, व उन्हें अपनी परेशानी बताई। जिलाधीश ने सरकारी आर्डर पढ़कर हरकत दिखाई। तुरंत कार्रवाही करते हुए उसने कॉलेज प्रशासन को फोन कर फटकार लगाई व कॉलेज खोलने को कहा और आफलाइन कक्षाएं लगाने को कहा। फलस्वरुप 06-12-2021 को हमने अपना कॉलेज - सरकारी डिग्री कॉलेज कठुआ, जम्मू-कश्मीर खुलवाया। हमारी मेहनत से कॉलेज तो खुल गया लेकिन सर्दियों की छुट्टियां पढ़ने से पहले लगभग 20 दिन ही हम कॉलेज में सुचारु रुप से पढ़ाई कर पाए। इसमें भी एक दिक्कत थी। दरअसल हमारी कक्षाएं ऑड-ईवन रोल नंबर के तरीके से लगी थीं। इस कारण प्रति छात्र 10 दिन की ऑफ़लाइन कक्षाएं ही हो पाईं थीं।

सर्दियों की छुट्टियों में हमारे कॉलेज 24-12-2021 से लेकर 05-01-2022 तक कॉलेज बंद ही रहे। कॉलेज खुलते ही 10-01-2022 से इंटरनल असैसमैंट होनी थीं, वो भी ऑफलाइन तरीके से। सरकार व कॉलेज प्रबंधन की लापवाही से मात्र दस दिनों की पढ़ाई के बाद आफलाइन तरीके से इंटरनल असैसमैंट का आर्डर छात्र/छात्राओं को नामंजूर था। उस वक्त भी हमारे साथियों द्वारा विरोध प्रर्दशन कर के ऑनलाइन तरीके से इंटरनल असैसमैंट की मांग मनवाई गई थी। इसके तुरंत बाद कोरोना की तीसरी लहर भी आ गयी थी। 10-01-2022 को हमारे कॉलेज फिर से बंद कर दिए गए और ऑनलाइन पढ़ाई चलने लगी। एक महीने से ज्यादा का वक्त हो गया, करोना की तीसरी लहर खत्म हुई और 14-02-2022 को हमारे कॉलेज खुल गए। कॉलेज खुले अभी एक दिन ही हदन हुआ था कि 15-02-2022 को जम्मू विश्विद्यालय के कंट्रोलर ऑफ एग्जामिनेशन ने एक ऑनलाइन बैठक की। इस बैठक में सरकारी डिग्री कॉलेजों के प्रिंसिपल मौजूद थे। इस बैठक में डिगी कॉलेजों के प्रिंसीपलों ने हमारे सिलेबस के बारे में बात रखते हुए कहा कि 80 प्रतिशत सिलेबस ऑफलाइन तरीके से पूरा किया जा चुका है इसलिए ऑफलाइन परीक्षाएं करवाई जा सकती हैं।

लेकिन यह सरासर झूठ था। सिर्फ 10 दिनों की ऑफलाइन कक्षाओं में 80 प्रीतीश सिलेबस पूरा कैसे हो सकता है? इसलिए हमने उसी दिन से छात्रों के साथ बातचीत करना शुरू कर दिया। 17-02-2022 को हमने प्रेस एक कॉन्फ्रेंस कराई। मीडिया के माध्यम से जम्मू वि. वि को यह बतलाना चाहा कि ऑफलाइन तो छोड़िए, हमारी ऑनलाइन कक्षाएं भी ठीक से नहीं हुई है। बहुत सारे ग्रामीण, पहाड़ी, सीमावर्ती और दूर-दराज के इलाकों में रहने वाले छात्रों को नेटवर्क की समस्या आती थी। कई बार तो ऑनलाइन लैक्चर लेने वाले शिक्षकों को भी नेटवर्क की समस्या आती थी, जिससे कक्षा के बीच में कईं बार कनैक्शन टूट जाता था। ऑनलाइन कक्षाओं के दौरान कुछ विषय तो ऐसे भी होते थे, जिनका कोई निधार्रित समय व निरंतरता ही नहीं होती थी। ऐसे विषय जिनके लिए प्रैक्टिकल या व्हाइट बोर्ड जरूरी होता है उनके लिए भी कोई प्रबंध नहीं किया गया था। जिससे इन विषयों की पढ़ाई नहीं हुई थी। कई छात्रों के पास हर बार नेट का रिचार्ज करवाने के लिए भी पैसे नहीं होते थे। डेढ़ साल के लिए मुफ्त डाटा व सिम देने वाली जिओ व उसका समर्थन करने वाली हमारी सरकार ने भी इस मुसीबत में छात्रों को याद तक नहीं किया। इसी तरह और कईं तरह की परेशानियों का छात्रों ने सामना किया था। इसलिए हम चाहते थे कि हमारे परीक्षाएं ऑनलाइन ली जाएं। लेकिन जम्मू यूनिवर्सिटी प्रशासन ने कोई भी जवाब नहीं दिया, वह चुप-चाप बैठ कर तमाशा देखता रहा।

फिर हमने स्टूडैंट एक्शन कमेटी का गठन कर 22-02-2022 को जीडीसी कठुआ में हस्ताक्षर अभियान ओजित किया। उसमें हमने छात्रों की राय ली कि वे क्या चाहते हैं। जिसमें 2000 छात्रों ने ऑनलाइन परीक्षओं के समर्थन में हस्ताक्षर किए। हमने एक मेमोरेंडम बनाकर उसके साथ दो हजार हस्ताक्षर संलग्न किए और जम्मू यूनिवर्सिटी के वीसी को भेज दिए। लेकिन इसका भी कोई जवाब नहीं आया। हमारे इस कदम से जाहिर तौर पर कॉलेज प्रशासन से भी मतभेद होने लगा था। पहले तो कॉलेज प्रशासन खुद ही हमें धमकाने लगा फिर जब उसे विश्वास हो गया कि यह हमसे डरने वाले नहीं हैं तो उन्होंने कॉलेज के ही छात्रों को समर्थन देकर हमारे काम में रुकावट डालने के लिए भेजा। प्रशासन समथित यह छात्र गुंडों की तरह हमें परेशान करने लगे। वे कभी हमें गालियां देते तो कभी फोन कर धमकाते। लेकिन हम यह सोचते रहे कि इन लोगों से न ही उलझा जाए तो बेहतर होगा। इन लोगों से उलझने को हम छात्र एकता के लिए खतरा मानते रहे। हम कोशिश करते रहे कि समझा-बुझाकर इन्हें शांत करना ही बेहतर होगा। लेकिन उनकी हिम्मत और बढ़ती गई। उनकी धमकियों से अब हमारे सक्रिय छात्र भी डरने लगे। लेकिन हद तो तब हो गई जब एक दिन इन गुंडों ने मुझे और मेरे एक साथी को अकेला देखकर हम दोनों पर हमला कर दिया। उन्होंने हमारी साथ मारपीट शुरु कर दी। हमें थप्पड़ो, लात व घूसों से मारा। हमने इसकी शिकायत कॉलेज प्रशासन व पुलिस प्रशासन से भी की। लेकिन उन गुंडों के खिलाफ कोई कार्रवाही नहीं की गई।

दो दिन बाद यानी 01-03-2022 को हमने छात्रों को संगठित किया और गुंडागर्दी के खिलाफ व ऑनलाइन परीक्षाओं के समर्थन में सड़क जाम कर विरोध प्रदर्शन किया। इस प्रदर्शन से वे गुंडे और अधिक बौखला गए। प्रदर्शन खत्म करके हम कॉलेज के अंदर आए। जैसा कि हमें अंदाजा था कि वे गुंडे भी कॉलेज के अंदर घात लगाकर बैठे हमारा इंतजार कर रहे थे। उन्होंने मौका देखकर फिर से मुझपर हमला कर दिया। मैंने भी अपने बचाव में उन्हें पीछे हटाने की भरपूर कोशिश की। लेकिन हमारे साथियों के डर जाने के कारण वे गुंडे मुझ पर्र इंट पत्थर से हमला कर मेरा सर फाड़ने में कामयाब हो गए। मैं नीचे गिर गया व मेरे सर से खून बहने लगा। और तभी वहां कॉलेज प्रशासन आ पहुंचा। मेरी चोट की तरफ कोई ध्यान देते हुए प्रशासन अपने उन गुंडों को सुरक्षित करने में जुट गया। मेरी चोट को देखकर छात्रों में बहुत गुस्सा था। मुझे मेरे एक दोस्त ने उठाया व अपने कंधे पर रखा व अपनी बाइक पर बिठाया और अस्पताल ले गया। इस दौरान मुझ पर हमला करने वाले दो गुंडों को प्रशासन ने प्रशासनिक ब्लॉक में सुरक्षित बिठाकर रखा था। प्रशासन का यह रवैया देखकर कॉलेज के कई छात्र-छात्राएं प्रशासनिक ब्लॉक का घेराव कर प्रशासन के खिलाफ नारेबाजी करने लगे। पूरा माहौल गुस्से से भरा हुआ था। छात्र उन गुंडों को कॉलेज से बाहर निकालने की मांग कर रहे थे। कुछ छात्र उन्हें पुलिस को सौंपने की मांग कर रहे थे। लेकिन प्रशासन ने प्रशासनिक ब्लॉक के मुख्य दरवाजे को अंदर से बंद कर दिया था व अपने चहेते उन गुंडों को सुरक्षा मुहैया करवा रहा था। छात्रों का रोष अत्यधिक बढ़ जाने से छात्रों ने दरवाजे को खोलने की मांग की। दरवाजा फिर भी न खोला गया। फिर छात्रों ने दरवाजा तोड़ दिया। मेरी चोट की खबर सुनकर मेरा भाई भी प्रशासन से मिलने आया था। उसके वहां पहुचने पर छात्र दरवाजा तोड़ कर उन गुंडों को सबक सिखा रहे थे। वे गुंडे डरकर बाहर की तरफ भागे जिन्हें देखकर छात्र भी उनके पीछे दौड़े। लेकिन कॉलेज प्रशासन ने अपना असली चरित्र दिखाते हुए गुंडागर्दी की कहानी बनाकर मेरे भाई को ही पीटना शुरु कर दिया जिससे उसे भी सिर पर व रीढ़ की हड्डी में गंभीर चोटें आईं। उसे जबरन पकड़कर आफिस में बंद कर दिया गया। फिर पुलिस बुलाकर उसे पुलिस के हवाले कर दिया गया। पुलिस ने भी सारा केसे उसी पर डाल दिया। बाद में हमें उसकी जमानत करवानी पड़ी।

कॉलेज प्रशासन ने अपना बचाव करने के लिए ऐक्शन और उन दोनो गुंडों सहित मुझे भी कॉलेज से सस्पैंड कर दिया। इतना सबकुछ हो जाने के बावजूद भी कोई छात्र संगठन इस मसले पर कुछ नहीं बोला। लेकिन कॉलेज के छात्र सारी बात समझ चुके थे। इस घटना ने हमारे आंदोलन को नया मोड़ दिया। अब न तो कोई गुंडा छात्रों के इस सैलाब को रोक

सकता था और न ही प्रशासन। हमने फिर कॉलेज दर कॉलेज संपर्क अभियान करना शुरू किया और चार-पांच दिनों में अपने साथ 10 से 12 कॉलेजों को जोड़ लिया। स्टूडैंट ऐक्शन कमेटी के बैनर तले व कुछेक अन्य छात्र संगठनों के सहयोग से हमने जम्मू वि.वि पर धावा बोला और जोरदार आंदोलन किया। छात्रों ने बुलंद आवाज में आनलाइन परीक्षाएं करवाने की मांग उठाई। मौके पर परीक्षा कंट्रोलर पहुचे। उनसे बातचीत हुई, कंट्रोलर ने कहा कि वे तो ऑनलाइन परीक्षाएं ले सकते हैं, बशर्ते यदि कॉलेजों के प्रिंसिपल कहें कि उनके कॉलेजों का सिलेबस 80 प्रतिशत ऑफलाइन तरीके से पूरा नहीं हुआ है। यह आश्वासन लेकर हम वापस आ गए और अगले ही दिन सभी कॉलेजों ने अपनी कक्षाओं का बहिष्कार किया और कॉलेज के बाहर बाहर जोरदार प्रदर्शन किया और अपने प्रिंसिपल से लिखवा लिया कि सलेबस 80 प्रतिशत ऑफलाइन पूरा नहीं हुआ है।

बताता चलूं कि महिला सरकारी डिग्री कॉलेज की छात्राओं ने इस आंदालन में भरपूर भाग लिया। शूरुआती दौर में वहां की छात्राएं हमारे आंदोलन में शामिल नहीं हो रहीं थी। उसका मुख्य कारण था उनके प्रिंसिपल द्वारा उनपर बहुत दबाव बनाया जा रहा था। उनको कॉलेज से बाहर तक नहीं जाने दिया जाता था। प्रदर्शन करने पर उनको सस्पैंड करने की धमकी दी जाती थी। घरवालों को बुलाकर पढ़ाई छुड़वाने की धमकी दी जाती थी। 8 मार्च को बड़े स्तर पर महिला दिवस के दिन इसी कॉलेज में एक बड़ा कार्यक्रम किया गया था। लेकिन महिला दिवस को मनाने की रसम पूरी करने के बाद भ्महिला कॉलेज का प्रशासन अपने घिनौने पितृसत्तात्मक तौर तरीकों को जबरन छात्राओं पर लागू कर रहा था। जिस दिन आनलाइन परीक्षा की मांग को लेकर हमने महिला कालेज के गेट पर वहां के प्रिंसिपल के खिलाफ की, उसी दिन वहां की छात्राओं ने भी हिम्मत दिखाई। उन्होंने पिंसीपल के रोकने के बावजूद भी गेट से बाहर आकर प्रदर्शन किया और मीडिया के सामने प्रिंसिपल का असली चेहरा दिखाया। इस प्रदर्शन के अगले ही दिन जम्मू वि.वि के वाइस चांसलर ने फिर से हमारे सभी प्रिंसिपल के साथ ऑनलाइन बैठक की और उस बैठक में यह तय किया कि इस बार परीक्षाएं ऑनलाइन तरीके से ली जाएंगी और उसी दिन सरकारी नोटिफिकेशन आ गया। और आखिरकार हमारी जीत हुई।

धन्यवाद।

सन्नी डोगरा,

स्टूडेंट एक्शन कमेटी।

शिंदा ओनानोको (मृत लड़की)

-नाज़िम हिकमत

1955 में अमेरिका द्वारा हिरोशिमा (जापान) पर परमाणु बम गिराए जाने के दस साल बाद तुर्की के कवि नाज़िम हिकमत ने एक सात साल की बच्ची की आवाज़ में एक कविता लिखी थी। वह लड़की उस भयानक कृत्य में मर गई थी। कविता का बाद में नोबुयुकी नाकामोतो द्वारा 'शिंडा ओनानोको' ('मृत लड़की') शीर्षक से जापानी में अनुवाद किया गया था और अक्सर इसे अत्याचार के स्मरणोत्सव में गाया जाता है। युद्ध की कठोरता और यूक्रेन में युद्ध के मद्दे नज़र हिकमत की सुंदर और हृदयस्पर्शी कविता पर एक बार फिर विचार करना सार्थक होगा:

मैं आकर हर दरवाजे पर खड़ा हो जाता हूँ

लेकिन मेरी खामोश चाल को कोई नहीं सुनता।

मैं दस्तक देता हूँ और फिर भी अनदेखा रहता हूँ

क्योंकि मैं मर गया हूँ, क्योंकि मैं मर गया हूँ ।

मैं केवल सात साल का हूँ, हालांकि मैं मर गया

हिरोशिमा में बहुत पहले।

मैं अब सात साल का हूँ जैसा मैं तब था।

जब बच्चे मर जाते हैं, तो वे बढ़ते नहीं हैं।

आग की लपटों से मेरे बाल झुलस गए।

मेरी आँखें धुंधली हो गईं; मेरी आंखें अंधी हो गईं।

मौत आई और मेरी हड्डियों को धूल में बदल दिया

और वह हवा से बिखर गया था।

मुझे न फल चाहिए, न चावल चाहिए।

मुझे न मिठाई चाहिए, न रोटी।

मैं अपने लिए कुछ नहीं मांगता

क्योंकि मैं मर गया हूँ , क्योंकि मैं मर गया हूँ ।

मैं जो कुछ पूछता हूँ, वह शांति के लिए है

तुम आज लड़ते हो, तुम आज लड़ते हो

ताकि दुनिया के बच्चे

जी सकते हैं और बढ़ सकते हैं और हँस सकते हैं
और खेल सकते हैं।

स्वामी, प्रकाशक व मुद्रक : श्री डोन्काडा रमेश पटनायक (संगठन सचिव, अखिल भारत शिक्षा अधिकार मंच),
11-4-169/1/ए, फ़्लैट नं० 306, प्लेज़ेंट अपार्टमेंट्स, रेड हिल्स, लकड़ी का पुल, ख़ैराताबाद, हैदराबाद 500004
फ़ोन : (040) 23305266, मो० : 0944980396, ईमेल : aifrte.secretariat@gmail.com
डेक्कन प्रेस, 1-9-1126/बी/ए, आज़माबाद, हैदराबाद 500020 से मुद्रित

अखिल भारत शिक्षा अधिकार मंच (अभाशिअमं) के न्यूज़लेटर 'तालीम की लड़ाई' की सामग्री का ग़ैर-व्यावसायिक सार्वजनिक इस्तेमाल किया जा सकता है, बशर्ते कि इसके स्रोत का संदर्भ दिया जाए।